एक बात और। मैं गुजराती जानता नहीं। अतएव इस अनुवाद में अनेक त्रुटियाँ हुई होंगी। विज्ञ पाठकों से उनके लिये क्षमा माँगते हुए प्रार्थना है कि वे उन्हें सुधार लेने की कृपा करें।

विनीत
देवीदत्त शुक्ल

कुछ लिखना एक प्रकार की अनधिकार चेष्टा ही नहीं किन्तु ढिठाई की सीमा के भीतर आ जाता है। तथापि इस रचना के दिव्य आकर्षण के फलस्वरूप यहाँ कुछ निवेदन करने के लोभ को संवरण करने में मैं असमर्थ हूँ।

देश में श्रीमद्भगवद्गीता का व्यापक प्रचार है। भगवद्वाणी होने के अतिरिक्त उसमें कर्म, भक्ति, योग और ज्ञान जैसे विषय इतने सरल ढंग से समझाये गये हैं कि आज के जिज्ञासुओं के लिए वह स्वभावतः हृदयहार हो रहा है। तो भी उसमें स्थल स्थल पर ऐसे प्रश्न उठते हैं, जिनका समाधान प्रयत्न करने पर भी नहीं हो पाता। प्रसन्नता की बात है कि श्री भैरवोपदेश से उन प्रश्नों की मीमांसा ही नहीं हो जाती किन्तु गीता के जटिल सिद्धान्त इस रचना के द्वारा हृदय में घर बना लेते हैं। उदाहरण के लिए गीता में वर्णित क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के ही प्रश्न को लीजिये। श्री भैरवोपदेश में बताया गया है कि 'क्षेत्र है, क्षेत्रज्ञ है परन्तु एक क्षेत्रपाल भी है।' इसी प्रकार गीता के विभूति योग में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि 'वृक्षों में पीपल मैं हूँ, नदियों में गंगा मैं हूँ' आदि आदि परन्तु श्री भैरवोपदेश में कहा गया है कि 'वृक्षों में पीपल मैं हूँ तो बबूल भी मैं हूँ।' इस प्रकार इसका यह विभूति योग पाठक को भले प्रकार बोध करा देता है कि परब्रह्म किस प्रकार इस असीम विश्व में व्याप्त है। वास्तव में इस रचना का यह प्रकरण भी अपने ढँग का निराला और अनूठा है।

परन्तु मुझ जैसे साधारण पाठकों की अल्प बुद्धि में योग, ज्ञान आदि गंभीर विषय उतना समझ में नहीं आ पाते। ऐसों के लिए श्री भैरवोपदेश में इन सभी विषयों का विवेचन ऐसे ढंग से किया गया है कि साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी उन्हें भले प्रकार हृदयंगम कर सकता है। श्री बाबा जी ने भक्तियोग के सम्बन्ध में जो अपना व्यावहारिक अनुभव लिपिबद्ध किया है, वह और भी विलक्षण है। किस विकलता के साथ अपनी खोई वस्तु की प्राप्ति के लिये वे कितना आकुल और व्याकुल हुए हैं, उसका वर्णन इसमें उन्होंने जितने सुन्दर ढंग से किया है, वह अनोखा तो है ही परन्तु वस्तु के प्राप्त हो जाने पर उन्होंने उसके सम्बन्ध में जिस ढंग से मौन धारण कर लिया है, वह वास्तविकता के चित्रण का अपना एक अलग उदाहरण है। मैं कहूँगा कि इस रचना का यह अंश अभूतपूर्व है। यों सारी रचना तो दिव्य है ही। उदाहरण के लिए ज्ञान-विषय को ही लीजिए। इस विषय के अथ और इति का जानना एक टेढ़ी खीर है परन्तु इस रचना के ज्ञानयोग प्रकरण में उसकी साधना की जो पद्धति निर्दिष्ट की गई है, उससे ज्ञान का दुर्ज्ञेय विषय अत्यन्त ही सरल और बोधगम्य हो जाता है।

अध्यात्म-विषय के प्रेमियों को इस रचना का संग्रह कर इससे अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

परम पूज्य श्री दादा जी

ग्रन्थकर्त्ता का परिचय

यह सर्वथा स्वाभाविक है कि भैरवोपदेश पढ़नेवालों को इसके रचयिता योगिराज महाराज श्री मोतीलाल जी महाराज का परिचय (जिनको उनके परिचित बाबा श्री के नाम से पहचानते हैं) जानने की जिज्ञासा हो। इन महात्मा जी का परिचय तीन-चार वर्ष पहले मुझे ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मचारी श्री नृसिंह शर्मा ने कराया था। उन्होंने कहा कि 'योग और मंत्रशास्त्र के अनुभव-सिद्ध ज्ञान को जतानेवाला एक व्यक्ति काशी में आया है और उसके दर्शन का लाभ अवश्य लेने योग्य है। मुझे उनके समागम से बहुत लाभ और संतोष हुआ है।' ब्रह्मचारी जी सदैव तुले हुये शब्द ही बोलते थे। इससे मुझे उनकी बात से बाबा श्री के दर्शन का लाभ लेने की इच्छा हुई। दैव योग से मुझे बम्बई जाना पड़ा। उस समय शर्मा जी वहीं थे। उन्होंने मुझसे कहा कि 'बाबा श्री आजकल यहाँ विराजमान हैं।' मैं ब्रह्मचारी जी के साथ बाबा श्री का दर्शन करने गया। प्रथम दर्शन से ही उनके उपासकों में दिखनेवाले विरल सद्गुणों ने मेरे अंतःकरण को आकृष्ट किया। उनकी दयालुता और उदारता ने मुझे मुग्ध कर लिया, और उनके अलौकिक ज्ञान से उनके पास रहने की इच्छा हुई पर उस समय यह योग नहीं आया। मुझे कलकत्ता जाना पड़ा। वहाँ से वापस आने के बाद उनके साथ विशेष परिचय का योग आया। तब मैंने जाना कि इस समय भारत में उनके जैसा मंत्रशास्त्र और योग का अनुभव-सिद्ध ज्ञाता भाग्य से ही कोई होगा। तभी मैंने यह भैरवोपदेश पढ़ा और इसको प्रकाशित करने के लिये बाबा श्री से आग्रह किया। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दे दी और इस प्रकार भैरवोपदेश

आज विश्वनारायण के कर-कमलों में अर्पण करने का सुयोग प्राप्त हुआ है।

भैरवोपदेश के पढ़ने के बाद उसमें संनिविष्ट विशाल ज्ञान और उसके कम से-कम शब्दों में समझाने का सचोट विधान देखकर मुझे उनके जीवन के संबन्ध में जानने की जिज्ञासा हुई और समय पाकर मैंने उनसे यह बात पूछी। उन्होंने मुझ पर दया करके अपने जीवन की कुछ रूप-रेखा सुनाई पर बीच में मैं बीमार पड़ गया। इसलिये मेरी लिखी हुई जीवनी कहीं खो गई। अतः मैं जनता के समक्ष जिस रूप में चाहिये, उस रूप में उसे यहाँ नहीं रख सकता, इसका मुझे बहुत क्षोभ है। परन्तु इन महात्मा जी के जीवन का जो थोड़ा बहुत मुझे स्मरण है, उससे मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि इनका जन्म, जीवन और कर्म अति दिव्य है। जनता जब इनके शब्दों को पढ़ेगी, उन पर विचार करेगी और उसी रीति से व्यवहार करने का प्रयत्न करेगी तभी इनके स्वरूप के विषय में उसमें भी मेरे जैसा ही अभिप्राय जाग्रत होगा।

'बाबा श्री का जन्म १६४१ की श्रावण कृष्ण त्रयोदशी और बुधवार के दिन संयुक्त प्रान्त के 'उरई' नाम के कस्बे में हुआ था। इनके पूर्वज सनातन धर्म का दृढ़ता से पालन करने-वाले उच्च जाति के गुजरात के खेडावाल ब्राह्मण थे। अत्यंत बाल्यावस्था से इनको पिता का वियोग हुआ। इनकी माता ने, जो परम दयालु और भक्ति से भरपूर अंतःकरणवाली थीं, अपने एकमात्र बालक का पालन करने में अपनी युवावस्था के वैधव्य दुःख को भुला दिया। माता की बुद्धि आज भी एक गृहकार्य चतुर सन्नारी और दिव्य प्रतिभा-संपन्ना, पूर्व-परिचिता सन्माताओं का स्मरण छोटे-छोटे प्रसंगों में

दिखाती है। महात्मा जी बाल्यावस्था में एक शास्त्री के पास वेद पढ़ते थे। उस समय उन्होंने वेदमत के ऊपर टीका लिखी थी पर आज उसका पूर्ण भाग अप्राप्य होने से उपयोग नहीं हो सकता। इस समय उनको गुजरात में रहने का भी समय मिला था। उन्होंने काशी में और गुजरात में 'बडोदरा' भाग में रहकर अंग्रेजी, फारसी, हिन्दी और संस्कृत आदि भाषाओं का अभ्यास किया था। उनका कुल उच्च होने के कारण माता ने बाल्यावस्था में ही विवाह के बंधन में उन्हें डाल दिया था परन्तु पूर्व-जन्म के संस्कार से वैराग्य साथ लेकर जन्मे हुये उस महात्मा ने, संसारी लोग जो सुख चाहते हैं, वह सुख चरणों में पड़े रहते हुये भी उसे छोड़कर जगत के हित के लिये सत्य को ढूंढ़ने और सत्य का प्रकाश फैलाने के लिये फ्रांस, इटली आदि स्थलों में भ्रमण करने के बाद हिमालय की दिव्य भूमि में जाकर तपश्चर्या की और अपने उद्देश्य में सफल होकर नीचे उतरे और कुछ समय काशी में रह कर हिन्दुस्तान की पैदल यात्रा की। इन दोनों यात्राओं ने उनके अतःकरण के गहरे संस्कारों को हुचमचा करके बाहर निकाल दिया। फिर जगत् के दुःखों से थक कर वे एकांतवास का सेवन करने के लिये आबू में जाकर रहे परन्तु अब तक उनके दिव्य गुणों का परिचय कई व्यक्तियों को हो चुका था। उन व्यक्तियों ने प्रार्थना की और उनको काशी ले गये। इस समय उनकी परिणीता स्त्री का देहान्त हो गया था। काशी से रायपुर, नागपुर और कलकत्ते की ओर घूमते-घामते आप बम्बई आये और अपने अनन्य भक्त श्री० रा० कन्हैयालाल रणछोड भाई दवे के यहाँ रहे। जब-जब वे बंबई आते हैं, तब तब वहीं रह कर यहाँ रहनेवाले शिष्यों को अपनी उपस्थिति का अलभ्य लाभ देते रहते हैं।

इन महात्मा के गाढ़ परिचय में आनेवाले जानते हैं कि इनका वचन कभी निष्फल नहीं जाता। इनका ब्रह्मचर्य उच्च प्रकार का है। इनका मानसिक बल ऐसा है कि यदि इनकी इच्छा हो तो दूसरे व्यक्ति के पूर्व जन्म का और भविष्य के जन्म का ज्ञान देने में समर्थ हैं। इनका जीवन अलौकिक दिव्यता पर, जो इन्होंने अपने अनेक पूर्व जन्मों में साध रक्खी है, निर्भर है। प्रसंगवशात् भिन्न भिन्न प्रकार के देवताओं के स्वरूप का इनके द्वारा अनेक भक्तों को साक्षात्कार हुआ है और होता रहता है।

मंत्रशास्त्र में ऊर्ध्वाम्नाय मार्ग अति उच्च कोटि का कहते हैं। यह मार्ग तलवार की धार पर चलने का मार्ग है। यह मार्ग महात्मा जी को तो सुख-शय्या में सोने-जैसा हो ही गया है पर जिन्होंने उनका आश्रय लिया है उनको भी यह अत्यंत सरल और अति उच्च दिशा में लानेवाला हो गया है। इतना मैं अनुभव से कह सकता हूँ। इस समय शाक्त-संप्रदाय के सच्चे रहस्य को समझे बिना जो आक्षेप होते हैं, उनके बारे में इनको बहुत दु:ख होता है, क्योंकि उस शास्त्र का सच्ची रीति से उपयोग न करके उसका विपरीत अर्थ लोग करते हैं। उसका सच्चा रहस्य समझाने का ये प्रयत्न कर रहे हैं और समय मिलने पर इस विषय पर भी लेख प्रकाशित होंगे।

इन महात्मा के ऊर्ध्वाम्नाय का जो ज्ञान मुझे मिला है, उससे मैं इन्हें सबसे श्रेष्ठ और दिव्यात्मा रूप से जानता हूँ, मानता हूँ और इनकी वंदना करने में अपनी महत्ता समझता हूँ।

—स्वामी श्री त्रिविक्रम तीर्थ जी

ग्रंथ-परिचय

यह ग्रंथ सरल कविता में है। जो इसका पाठ करना चाहते हों, सरलता से कर सकते हैं। ग्रंथ की भाषा और उसमें के अलंकार आदि के संबन्ध में विद्वानों का अभिप्राय जोरदार रहता है, परन्तु उसमें वर्णित विषय के सम्बन्ध में यहाँ अपना मत प्रदर्शित करना अनुचित न होगा।

इस ग्रंथ में सबसे पहले 'निष्काम योग' का वर्णन किया गया है, जो उन्नति के सभी अभिलाषियों और कर्ममार्ग के अधिकारियों के लिये आवश्यक है। इस 'निष्काम योग' की पूर्ति, 'कर्म संन्यास योग' द्वारा ही हो सकती है। उसका भी वर्णन इसमें यथा स्थान किया गया है। कर्म और अकर्म के बन्धनों से मुक्त जीव अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इसलिए 'अध्यात्म योग' का वर्णन 'कर्म संन्यास योग' के बाद किया गया है। 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' के ज्ञान के बिना अध्यात्म-ज्ञान पूर्ण नहीं होता। इसलिये उसका भी वर्णन किया गया है। वैराग्य के बिना क्षेत्र का स्वरूप पूर्ण रूप से समझ में नहीं आता, इसलिए समयानुसार 'वैराग्य योग' का वर्णन भी किया गया है। अब इस उद्देश्य से कि मानवीय जीवन वासनाओं से मुक्त होकर उच्च स्थिति प्राप्त करे, अंतराग्नि होत्र का वर्णन किया गया है। दिव्य भाव प्राप्त होते ही 'विज्ञान योग' का अनुभव होता है। इसलिये अंतराग्नि होम के बाद दिव्य भाव का सांकेतिक सूचना रूप से और 'विज्ञान योग' का फल-रूप से वर्णन किया गया है। इस 'विज्ञान योग' के प्रकरण में सोपान-रूप से योग का और वर्तमान काल में लुप्तप्राय परन्तु जनता के परम हित साधक 'मंत्रयोग' का भी वर्णन किया गया है।

इस मंत्रयोग के परिणाम रूप में 'राजयोग' का वर्णन किया गया है। 'राजयोग' मंत्रयोग के अतिरिक्त योग के दूसरे भेदों द्वारा भी प्राप्त हो सकता है। इसी उद्देश्य से 'लययोग' और 'हठयोग' का बाद में वर्णन किया गया है।

राजयोग के परिणामस्वरूप 'दिव्य योग' का अनुभव होता है। इसलिए 'दिव्य योग' का वर्णन, जो 'हठयोग' के बाद किया गया है, वह सर्वथा उपयुक्त ही हुआ है। मंदाधिकारी प्राणी मंत्रयोग-द्वारा आगे नहीं बढ़ सकते। उनका भी श्रेय हो, इस उद्देश्य से बालकों और वृद्धों-द्वारा भी साध्य 'नादयोग' लिखा गया है। अन्य देशों में जो वस्तु नहीं है, भारतवर्ष में ही मुख्यतः देखने में आती है, ऐसी विभूतियों का वर्णन महात्माओं के जीवन के रहस्य को समझानेवाला है। महात्मा लोग जगत् के ही लिये जीते हैं। इस सत्य को दिखानेवाले और 'भक्तियोग' के बीज को हृदय में उत्पन्न करनेवाले 'विभूति योग' का वर्णन भी इसमें किया गया है और उसके बाद सर्वभूत के हित के साधन रूप 'भक्तियोग' का वर्णन करके ग्रंथ पूर्ण किया गया है। इस प्रकार इस छोटे से ग्रंथ में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की भाँति तीनों काण्डों और सोलह योगों का वर्णन कर ऐसी जगत् हितकारी एक नई योजना उपस्थित की गई है, जिससे सरल दृष्टि, सरल बुद्धि और सरल स्वभाव के व्यक्तियों का भी उपकार हो।

यह ग्रंथ विद्वान् और अविद्वान्, साधक और विषयी, मुमुक्षु और मुक्त सभी के द्वारा आदरणीय होगा, ऐसा मेरा मत है, और मेरी यह भी सम्मति है कि यदि इस ग्रंथ का दूसरी भाषा में अनुवाद हो तो इससे अन्य भाषा भाषियों का भी महान् लाभ हो सकेगा।

इस पुस्तक के प्रकाशित होने के बाद समय और अनु-कूलता प्राप्त होने पर महाराज श्री के दूसरे काव्यों, उपदेशों और अन्य कृतियों को प्रकाशित करने की उनके शिष्यों की इच्छा है। उसके पूर्ण होने से जनता के सम्मुख उपयोगी कृतियाँ आएँगी, जो अत्यन्त कल्याणप्रद सिद्ध होंगी। ऐसी मेरी आशा है।

लींबडी
नवम्बर १९३४ —स्वामी श्रीत्रिविक्रम तीर्थ जी

अनुक्रमणिका

—: ❀ :—

उच्च पद प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को अनेक बार लात-जूते खाने पड़ते हैं, इस विषय में लेखक ने अपना अनुभव निम्नलिखित प्रथम कवित्त द्वारा विदित किया है—

कवित

आव्यो, जर लाव्यो, जग फाव्यो नहीं एकवार,
वार वार वारनी, सुदाढ़ोथी चवायो छूं ।

मैं दुनियाँ मे कई बार आया। साथ में जर अर्थात् कमाई भी लाया था, खाली हाथ नहीं आया था। तो भी मुझे एक बार भी सफलता नहीं मिली और बार बार कालरूपी दाढ़ों द्वारा चबाया गया।

कर्मचक्र, कालचक्र, विश्वचक्र, देवचक्र,
चक्रना चकावू, छेतरायो छूं, छवायो छूं ।

इतना ही नहीं किन्तु मैं कर्मचक्र, कालचक्र, विश्वचक्र तथा देवचक्र के चकावू अर्थात् जाल मे फँसता ही रहा और धोखा खाता रहा।

रूप रस रंग संग, जंग जोर जोतरायो,
त्यां तरी ने आववा, ठेकाणे छेतरायो छूं।

मैने रूप, रङ्ग याने दुनियाँ की आकर्षक वस्तुओं के साथ पूर्ण इच्छा से युद्ध किया, तो भी कई बार आखिरी मंजिल पर पहुँचते-पहुँचते धक्का खाया, और फिर मैं वहां-का-वहीं हूँ, यही अनुभव किया और देखता हूँ तो फिर भी युद्ध सामने ही दिखाई दिया। मैंने कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं की।

आज विश्व युद्ध, शस्त्रपातना प्रसंगे हाय!
शूं थयूं घवायो, गभरायो, के हणायो छूं।

इतना घोर परिश्रम करने के बाद, जब ठीक विश्व-युद्ध का समय आ पहुँचा तो उस समय मुझे यह अनुभव होने लगा कि मैं क्या घायल हो गया हूँ कि घबरा गया हूँ या खतम हो गया हूँ, क्या बात है, जो मुझे निश्चलता दिखाई दे रही है।

इसी प्रकार साधक को अपने ध्येय तक पहुँचने में बार-बार निष्फलता का अनुभव होता है पर इससे घबरा कर प्रयत्न करना नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि प्रयत्न कभी निष्फल नहीं जाता। आज हमें सफलता न दिखाई दे, पर प्रयत्न करते ही रहेंगे तो एक दिन सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

श्री भैरवोपदेश
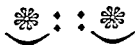
थया पूरवे भर्तृहरि नाम राजा,
तज्युं पिंगला कारणे राज्य जेणे। १

विक्रम सम्वत् के करीब ७५ वर्ष पहले उज्जैन में श्री महाराज भर्तृहरि हुये। उन्होंने अपनी स्त्री रानी पिंगला के कारण अपना राज्यासन छोड़ दिया।

सुरम्या हती पद्मिणी रूप राणी,
जनम पामियो देश काश्मिर तेणे। २

पिंगला पद्मिनी अति रूपवती और रम्य स्त्री थी। उसका जन्म काश्मीर में हुआ था।

फसाणी जई अश्वना पालकेथी,
पड़े वांदरू काममां डाळकेथी। ३

जैसे बन्दर बँदरिया के पीछे पड़कर वृक्ष की डाली पर से नीचे कूद पड़ता है वैसे ही रानी पिंगला अपने एक अश्वपाल के प्रेम में फँस गई।

पछेथी पड्यूं पोगळूं पाधरू ज्यां,
गयो सर्व ते त्यागिने पाधरू त्यां। ४

बाद को जब इस बात का पता चला तो महाराज श्री भर्तृहरि को इतना आघात पहुँचा कि वे अपना राज्य, प्रिय स्त्री, धन आदि सब छोड़कर जङ्गल में चले गये।

महारण्यमां पामियो श्री गुरूने,
सु मात्स्येन्द्र ना रूप धारी रूरूने। ५

जङ्गल में उनको श्री अष्टभैरवों में से एक श्रीभगवान् रुरु से, जिन्होंने भगवान् मत्स्येन्द्रनाथ के नाम से जन्म लिया था, भेंट हुई।

महा भैरवे श्री रूरू देह धारी,
जणी केन्द्र थी आवता ने उगारी। ६

चित्तत्व में से प्रकृति अपनी आवश्यकतानुसार किसी एक महान् व्यक्ति का उत्थान करती है। उसको केन्द्रस्थ व्यक्ति कहते हैं। श्री महाराज भर्तृहरि ऐसे ही केन्द्रस्थ व्यक्ति थे। उनके शीघ्र उत्थान के लिये ही भगवान् श्री रुरु ने जन्म लिया था। उन्होंने उनको उबार लिया।

जई ने पड्यो चर्ण मां राजियो ते,
थयो त्यागि ने भीख नो मांजियो ते। ७

उनको देखते ही महाराज भर्तृहरि उनके चरणों पर गिर पड़े और सब त्याग कर गुरु से भीख माँगते हुए कहने लगे—

प्रभू विश्व आ दुःखनु रूप देखूं,
कहो शान्ति ने दुःख मां क्यां परेखूं। ८

'हे प्रभु ! यह विश्व महान् दुःख से भरा हुआ है। इसमें शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है !

पड़ी विश्वनां खाडमां डूबतो हूँ,
फहाडो विभो हाथ झाली जतो हूँ। ९

'हे प्रभु! मैं इस विश्व रूपी खड्ड में पड़ा हूँ और डूब रहा हूँ। आप मेरा हाथ पकड़ कर मुझे इसमें बाहर निकालिये।

महारू' नथी विश्व मां कोइ नाथ,
तमो मात ने तात ने मित्र भ्रात। १०

'हे प्रभु! इस विश्व में आपके सिवा मेरा और कोई नहीं है। आप ही मेरे मा-बाप, भाई, मित्र सब कुछ हैं।

गुरो शर्णे मां ताहरे नाथ आव्यो,
उगारो हरे नाथ यां हूँ न फाव्यो। ११

'मैं आपकी शरण में आया हूं। हे गुरु! मुझको बचाइये। मैं कहीं का नहीं रहा। मैं सब तरह से हार चुका हूँ।'

कही ते पड्यो पाद पामी अलोटी,
नथी चित्त लोटी रही के लंगोटी। १२

इस प्रकार कहकर वे गुरु के चरणों पर गिर पड़े। उस समय उनके चित्त में लोटी या लँगोटी कुछ भी रखने की इच्छा नहीं थी। अर्थात् सब चिन्ताओं से मुक्त होकर वे गुरु के चरणों में ढल गये थे।

गुरु श्री रूरू ते उठाडी बझावी,
शिरे हाथ दइ फेरवी चित्त चावी। १३

तब भगवान् श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी ने उनको उठाया और अपनी छाती से लगाकर उनके सिर पर हाथ फेरा। उन्होंने उनके चित्त की चाभी फिरा दी (जिससे उनको सत्य वस्तु का अनुभव हो) और कहा—

"कहे शूं पड्यो ऊठरे ऊठ बेटा,
पडे जो पडे कालना श्रा चपेटा। १४

अरे बेटा ! उठ, ऐसा क्यों पड़ा है ? यह तो काल की चोट है। इसके लगने से व्यक्ति को बहुत कुछ सीखने को मिलता है। उठ और जो मैं कहता हूँ, उसे सुन।

कहूँ सांमळो चालजो मार्ग चेती,
ठरी पामशो भैरवि चित्त चेती।" १५

इस विश्व में जो साच समझ कर पैर रखना है, वही प्रकाश को पाकर भैरव के से शान्त चित्त को पा सकता है।*

निष्काम योग

जुश्रो जे छे सदा ते छे, नथी ते जागशे क्यांथी;
इशे सूतो सुषुप्तिमां, तुरीया स्वप्न ते जागे। १६

देखो, इस विश्व में जिस वस्तु का अस्तित्व हमेशा से है, वह रहेगा ही और जो नहीं है, वह कहाँ रहेगा ? इसलिये यह अपना जो अस्तित्व है, वह सदा रहनेवाला है। यदि व्यक्ति स्वप्न, सुषुप्ति या तुरीय अवस्था में सोया हुआ होगा तो किसी दिन जरूर जागेगा। यदि कोई चीज होगी ही नहीं तो कहाँ से आएगी ?

यदि अस्तित्व मिथ्या छे, जणाशे विश्व आ क्यांथी,
अने रूपान्तरो जो छे, फरी ने रूप त्यां जागे। १७

वेदान्ती कहते हैं—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' परन्तु उपदेशक कहता है कि यदि जगत् मिथ्या है तो जगत् में रहनेवाले जीव भी मिथ्या होने

* अब यहाँ से गुरुदेव का उपदेश शुरू होता है।

चाहिए। इसलिए यदि जीव का अस्तित्व मिथ्या होगा तो विश्व कहाँ दिखाई देगा? कोई देखनेवाला ही नहीं है तो क्या दिखेगा और किसको दिखेगा! इससे यह समझना चाहिए कि विश्व में इस प्रकार प्रत्येक क्षण परिवर्तन होता ही रहता है। ऐसी दशा में जो है, उसका परिवर्तन होकर वह नये रूप मे जाग्रत होगा ही।

व्हाला दृश्यना परदा, रंगेला बे रंगे भासे,
सफेदी एक बाजुओ, तरफ बीजी सिया भासे। १८

इस विश्व में जो दृश्य रूपी पर्दा दिखाई देता है, वह दुरङ्गा दिखाई पड़ता है। उसका एक पक्ष सफेद है और दूसरा काले रङ्ग का दीखता है।

सफेदी सूखना रूपे, सियाही दुःखना कूपे,
पहेली पौरुषी छाया, द्वितीया प्राकृति माया। १९

जब सफेद रङ्ग सामने आता है तो सुख का अनुभव होता है और काले के आने से दुःख होता है। सुख पौरुषी छाया अर्थात् विद्या है, और दुःख प्राकृतिक माया यानी अविद्या है।

चकर दम चक्र चाले छे, गणो बे एकना रूप,
नहीं त्यां दुःख के सूख, गणो बे बन्धना रूप। २०

ऐसे सुख और दुःख के पद एक के बाद एक बदलते ही रहते हैं। वास्तव में न सुख है और न दुःख। दोनों एक ही हैं पर व्यक्ति उनको अलग-अलग मान कर बन्धन में बँध जाता है।

कहे शूं वेदना वादी, करे व्यवसाय बुद्धी मां,
नठारू आ हशे सारू, जशे जो स्वर्ग बुद्धी मां। २१

वेद के माननेवाले कहते हैं कि अमुक यज्ञ करने से यह फल होगा; अमुक करने से स्वर्ग, पुण्य, आदि मिलेगा; यह कर्म अच्छा है और

यह बुरा है। इस प्रकार कहकर वे अपनी व्यवसायात्मिका बुद्धि द्वारा स्वर्ग की बात बताते हैं।

करे ते पामता स्वर्गे, चढ़े पाछा पडे नर्के,
छुटे क्यां आवता जाता, रहे चोंटी फरे चक्रे। २२

परन्तु यज्ञ करनेवाला व्यक्ति स्वर्ग में जाता भी हो, तो भी पुण्य क्षीण होने से फिर उसे मृत्युलोक में जन्म लेना ही पड़ता है और वह जन्म मरण रूपी चक्र मे चिपटा ही रहता है।

थइ सत्वस्थ त्यागी, द्वैत ने योगे रहो प्यारा,
तजो जो भोगनी इच्छा, रमो क्यां जोइये प्यारा। २३

यदि इस जन्म-मरण के फेर से छूटना है तो विद्या और अविद्या रूपी जो द्वैत याने रज और तम हैं, इन दोनों को त्याग कर दोनों के बीच सत्वस्थ की स्थिति में रहकर विश्व में व्यवहार करो। त्यागना अर्थात् सुख और दुःख का समान मानना सीखो और भोग की इच्छा को भी छोड़ दोगे तो जैसा तुम बनना चाहते हो, वैसा बन सकोगे।

तजी ने गंगना पाणी, अरे शूं कूप खोळो छो,
सदा आनन्दने झरणे, झरी शूं रूप तोळो छो। २४

गङ्गा के जल को छोड़कर तुम वृथा कुएँ को ढूँढने मत जाओ। तुम्हारे मन में जो आनन्द रूपी झरना बहता है, उसको छोड़कर रूप का पल्ला ऊपर है या नीचे यह मत देखो। अर्थात् अच्छे और बुरे की द्वैत बुद्धि में न रहो।

जवुं सदकर्म नी राहे, तजीने मोहनां खाड़ा,
फळे के ना फळे खेतर, हमारे वाववा वारा। २५

तुमको तो मोह रूपी गड्ढे से बचकर सत्कर्म की राह पर चलना है। सत्कर्म का फल मिले या न मिले, तुमको तो यही करते रहना है।

तरे ममता तणो दरियो, तमारी बुद्धि जो थई दृढ़,
छुटे त्रण कालना पाशे, फर्यू जे विश्वना आगढ़। २६

यदि सत्कर्म करने में तुम्हारी बुद्धि दृढ हो जायगी तो तुम ममता-मोह रूपी समुद्र को पार कर जाओगे और इस विश्व रूपी किले में भूत, भविष्य और वर्तमान में बने हुए या बननेवाले कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाओगे।

तजीने कल्पना सारी, उठे जे मानसी सरथी,
सुओ प्रज्ञा तणी सेजे, थइ स्थित प्रज्ञ आगरथी। २७

मनरूपी तालाव में जो कल्पना रूपी लहरें याने हवाई तरंगें उठती हैं, उस विष को तज कर जब तुम स्थितप्रज्ञ बनोगे तब विज्ञान-रूपी गद्दे पर सो सकोगे।

सुखी ना थाय जे सेजे, सुइ दुःखना गणे कांटे,
नथी को वस्तु मां कपण, नथी इर्षा तुली कांटे। २८

जो इस गद्दे पर सोकर सुख-दुःख का समान मानना है; जिसे किसी वस्तु के प्रति आकर्षण नहीं है—

अहा ते संयमी छे धन्य, जे आत्मा महीं निष्ठ,
चळे ना इन्द्रियो जेनी, रहे जई अन्तरे निष्ठ। २६

और जिसके मन में ईर्षा नहीं है, उस संयमी को धन्य है। जिसकी इन्द्रियाँ चलायमान नहीं होती और जो अपनी ही अन्तरात्मा में मग्न रहता है, उसे धन्य है।

रमे जे द्वैतमां बुद्धी, नहीं तेनी समी सरसी,
समी ते बुद्धि जो ना तो, रमे ना आतमा सरसी। ३०

जो बुद्धि द्वैत (याने हर्ष-शोक, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि) में फँसी रहती है, वह अच्छी बुद्धि नहीं है। जब तक समता नहीं होगी तब तक व्यक्ति न आत्मनिष्ठ हो सकता है और न आत्मरत।

अस्तित्व के बिन्दु में माया के प्रवाह से कर्म उत्पन्न होता है अर्थात् जीव माया के प्रवाह के कारण ही कर्म करता है, परन्तु वह अभिमान में फँस कर कहता है कि 'यह काम मैंने किया है' या 'मेरे सामर्थ्य से हुआ है।'

परन्तु कर्म ना गुणने, कळे जे जाणवा वाळा,
विदित छे तेहने गुणनी, प्रवृत्ती गुण मां काळा। २६

पर जो कर्म के गुणों को जानता है, उसको यह मालूम है कि गुण की प्रवृत्ति गुण में ही होती है।

प्रकृतिना गुण जे जाणे, फसे शूं इन्द्रियोमां ते,
अरे आ तत्वथी जाग्या, विषय ते गूणमां मां ते। ३०

इसलिये प्रकृति के गुणों को जाननेवाला इन्द्रियों में नहीं फँसता, क्योंकि गुण तो तत्व में से उत्पन्न होता है और वह विषय भी गुण का ही है व्यक्ति का नहीं।

नहीं जे गूण ने जाणे अहंकारे फसाये सो,
अमो सारा अमो माठा, अमारा कर्म छे ते सो। ३८

जो गुण के इस प्रवाह को नहीं जानता, वह अहङ्कार में फँसकर 'अपना यह कर्म अच्छा है, यह बुरा है' कहकर अपने में कर्म की स्थापना करता है।

पोतानी आतमा आ कर्म नी धारा तणी स्रोती,
गणी जे शोकने आशा, तजे ते पामतो 'मोती'। ३६

अपनी आतमा कर्म की धारा का स्रोत है, यह समझकर जो शोक और आशा को छोड़ देता है, उसको सत्य का प्रकाश दीखता है।

जगतमां ज्ञानियो अज्ञानि, ने जे जीव जीवे छे,
करे कर्मो, पोतानी प्रकृतिना, अंगे तजे शूं छे। ४०

इस संसार में ज्ञानी, अज्ञानी, सभी जीव अपने स्वभावानुसार कर्म करते रहते हैं। वे कुछ भी नहीं छोड़ सकते, क्योंकि उन सबको जगत् के शीत-उष्ण लाभ-हानि इत्यादि का द्वित्व लगा हुआ है। फिर वे त्यागी कैसे हो सकते हैं और बन्धन से कैसे छूट सकते हैं?

अरे जो इन्द्रियो प्रत्येक, पोताना गुणे रमतो,
तजे छे एकने बीजुं लई तेना गुणे रमवो। ४१

प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने गुणों में फिरती रहती है। यदि कोई व्यक्ति किसी एक विषय को छोड़ेगा तो दूसरा विषय उस पर चढ़ बैठेगा। जैसे, व्यक्ति ने यदि 'काम' को जीत लिया है तो 'क्रोध' बढ़ जायगा।

परन्तु ते गुणो मां द्वेष ने कामादि जो जागे,
पडे तो बन्धने खारा, खरी तेमां मळी मागे। ४२

इन गुणों के पीछे दौड़ने से द्वेष, काम, क्रोध आदि विषय जागते हैं और व्यक्ति बन्धन में बुरी तरह फँसकर अपने मार्ग से च्युत हो जाता है।

अरे आ स्वादना फांसे, फसे ते भोग नाना तो,
भले भोगो बधा भोगे, फसे जो स्वादमा ना तो। ४३

यहाँ तक कि इन विषयों के स्वाद में फँसकर मन नाना प्रकार के भोग भोगता है पर भोग को भोगते हुये भी यदि मन उसमें न फँसे तो भोग के भोगने में कोई हानि नहीं है।

जुओ हूँ नेत्रना विषये, गयो जोवा महा नाटक,
अहा शूं रंगभूमी आ, रह्यो जोतो करी आटक। ४४

अब ऊपर कही हुई बात का दृष्टान्त सुनो। जैसे, आँख को देखना अच्छा लगता है। नाटक देखना नेत्र का विषय है। नेत्र के विषय के कारण मैं एक दिन विश्व का महा नाटक देखने गया और वहाँ की रङ्ग-भूमि, सीन-सीनरी, नट नटी आदि की प्रशंसा करता हुआ ध्यान से उसे देखता रहा।

थयूं ज्यां पूर्ण ते नाटक, गुणो में तेहथी लीधा,
रखे जो मोहना फांसे, फसे अन्दर जड़ो दीधा। ४५

नाटक के पूर्ण होते ही मैंने उसकी उन बातों को छोड़कर, जिनसे मेरा मन मोह के जाल में फँस जाता, मैंने ग्रहण करने योग्य गुणों को अन्तर में स्थिर कर लिया।

महारो मित्र ते जोवा, गयो त्यां आंसुओ भरतो,
अरे आ दुःख जो रामा, रूवे आ मारथी फरतो। ४६

मेरा एक मित्र भी नाटक देखने गया था। नाटक में एक लड़की पर मार पड़ती है, जिससे वह रोती है। यह दृश्य देखकर मेरा मित्र भी रोने लगा—

पछे ते यादमां तेनी, विचारे स्वप्न ने जोतो,
खरेला चित्तथी घेरे, गयो हसतो अने रोतो। ४७

नाटक की बात को याद करता हुआ वह क्षण भर हँसता और क्षण भर रोता खिन्न चित्त से घर जा रहा था।

जतां जो मार्ग मां देख्यूं, अंधारे वृक्षनु ठूंठ,
अरे आ भूत छे जोजे, रखे मारे मुने मूंठ। ४८

रास्ते में चलते-चलते अँधेरे में उसने वृक्ष के एक ठँठ को देखा। उसको जान पड़ा कि यह कोई भूत है और शायद मुझको मूठ मारेगा।

कही ने नासतो चाल्यो, मगज मां भूत पेठूं हा,
जई सूतो पथारी मां, छता भूले न दीठूं हा। ४६

ऐसा सोचकर वह घर की ओर जान बचाकर भागा। घर में जाकर विस्तर मे लेटने पर भी भूत की बात को वह भूल नहीं सका, यद्यपि भूत आदि कुछ था ही नहीं।

जुओ मन इन्द्रियो आ, रीतथी जगने नचावे छे,
पडे वश ते तणे जे ते, पडे ने भूत थावे छे। ५०

ठीक ऐसे ही मन और इन्द्रियाँ जगत् को इसी तरह नचाती हैं और जो उनके जाल मे आ जाता है, उसका व्यक्ति-अस्तित्व गिर जाता है और उसे भूत दीखने लगता है।

परन्तु ज्ञानिना चित्ते, कदी आवु न आवे छे,
अने ना शब्द रूपादी, गुणो तेने फसावे छे। ५१

पर इस बात को ज्ञानी भले प्रकार जानता है। उसके चित्त में कभी ऐसे विचार नहीं आ सकते और शब्द-रूपादि गुण उसको फँसा नहीं सकते।

सुणो मन राजसी रूपे, जणे छे क्रोध ने काम,
महाशक्ति धरावे। ते, ठरे ना बोधना जाम। ५२

मन में रजोगुण का प्राधान्य होने से काम और क्रोध पैदा होते हैं। वे दोनों ही महान् शक्तिशाली हैं। ज्ञान-द्वारा समझाने से भी वे नहीं समझते।

फसावी पाडता मोटा, धुरंधर ज्ञानियो ने ते,
वसे मन बुद्धि इन्द्रयादी, विटाइ प्राणियो ने ते। ५३

बड़े-बड़े धुरन्धर ज्ञानियों को भी वे फँसाकर गिरा देते हैं। ये प्रत्येक व्यक्ति के मन, बुद्धि और इन्द्रियों में लिपटे रहते हैं।

फसोना इन्द्रिय मामे, विचारी नित्य छे ना ते,
जुओ आ आवता जाता, विषय ने ओळखी जाते। ५४

इसलिये बेटा, इन्द्रियों के विषयों में मत फँसना। जब वे विषय तुझे फँसावें तब उनका सामना करना और मन को समझाने का प्रयत्न करना कि दो मिनट की मौज के लिये क्या फँस रहा है? इन्द्रियों के विषय आने-जानेवाले हैं और अनित्य हैं। इस बात का पूर्ण विचार करके अध्ययन करो।

अनित्यो नूं खरी जावूं, ठसे जो चित्त तारा मां,
मनो बुद्धी वशी थाशे, जशे ना ते नठारा मां। ५५

जो अनित्य है, वह सदा नहीं रहता, उसमें परिवर्तन होता ही रहता है। यह बात यदि तुम्हारे मन में धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा ठस जायगी तो फिर मन और बुद्धि तेरे वश में हो जायगी और बुरे विषयों में कभी नहीं जायगी।

जता भय क्रोधने माया, ठरे ते बुद्धिमां ज्ञान,
थशे अन्तःकरण शुद्धी, प्रकाशे आत्म विज्ञान। ५६

तेरे रास्ते में भय क्रोध माया इत्यादि तुझे सतायेंगे परन्तु उपर्युक्त अभ्यास करने से तेरी बुद्धि में ज्ञान आवेगा और अंतःकरण की शुद्धि होकर आत्म-विज्ञान का प्रकाश होगा।

करे जो धर्मथी कर्म नहीं ते कर्म बांधे पण,
करे ना कर्म जो बीने, जयो ते कर्म बांधे मन। ५७

मन में उच्च ध्येय को रखकर, समयानुकूल कर्तव्य समझकर कर्म करनेवाले व्यक्ति को कर्म के कोई बन्धन नहीं लगते परन्तु बिना ध्येय के, बिना सोचे, अपने मन में ही सकाम कर्म करनेवाले या भय के मारे कर्म न करनेवाले व्यक्ति मन को बन्धन में डालते हैं क्योंकि ऐसा कर्म या भय बन्धन-मूलक होता है।

तजी फळ फूलनी आशा, अरे माळी सुघड तूं कर,
बगीचो छो फले फूले, मळे तूंने जबर जो जर। ५८

हे माली! तू अपने मालिक के बगीचे को, कुछ भी लाभ उठाने की आशा रखे बिना, फल फूलों से शोभायमान कर दे। यदि तू लाभ की आशा करेगा तो तू अपने मालिक के प्रति बेईमान होगा और ईमानदारी से बगीचे को फूला-फला रखेगा तो तेरा मालिक तुझसे खुश होकर तुझे बहुत द्रव्य देगा।

मळे तेमा गुजारो कर, तजीने द्वन्द्व ने मत्सर,
न नुकशाने जरा तूं डर, जिगरने तोपथी सरकर। ५६

तू द्वित्व अर्थात् सुख-दुःख, हर्ष-शोक, लाभ-हानि आदि में समता रखकर अभिमान को छोड़कर जो कुछ तुझे मिले, उससे तू अपनी गुजर-बसर कर क्योंकि पराई चुपड़ी हुई रोटी अपने किस काम की? कभी नुकसान भी हो तो उससे डरना नहीं। तुझे तो अपने मन में सन्तोष रखकर जगत् के लाभ-रूपी शत्रु पर विजय पाना है।

करी कोइ महायज्ञो, जगाडे देवनी प्रीती,
अनल मां आत्म संयम होमता, विषयो कोइ जीती। ६०

इस विश्व में कई व्यक्ति अपने लाभ के लिये विष्णु यज्ञ, महा-रुद्रयाग, सामयाग, आदि यज्ञ देवताओं को प्रसन्न करने के लिये करते हैं तो कोई व्यक्ति इन्द्रियों के विषय को जीत कर आत्म-संयमरूपी अग्नि में हवन करता है।

कोइ जो आत्म संयम योग, अग्नी ज्ञानना इन्धन,
प्रदीपी होमता प्राणादि, कर्मो वैषिकी बन्धन। ६१

कोई व्यक्ति आत्मसंयम-रूप वेदी में ज्ञानरूपी लकड़ी से योगरूपी अग्नि प्रज्वलित करके प्राणादि कर्मों तथा विषयों के बन्धनों का होम कर देता है।

करे को दानना यज्ञो, अने को योगना यज्ञो,
करे धृत को गुरु पामी, करे को ज्ञानना यज्ञो। ६२

कोई अपनी मेहनत से की हुई कमाई के धन में से दान करके यज्ञ करते हैं, कई योग का यज्ञ करते हैं तो कोई गुरु को प्राप्त कर इन्द्रियों के संयम के लिये व्रत का पालन करता है; कोई ज्ञानरूपी यज्ञ करता है—

जुओ योगी तणा यज्ञो, करे पूरक तथा रेचक,
महा गति प्राणनी रोकी, बतावे कुंभकी पेचक। ६३

तो हठयोगी के यज्ञ में वे 'पूरक और रेचक' याने प्राण को भीतर बाहर करते हैं और प्राण की गति को रोककर कुम्भक की कला को चलाया करते हैं।

बिजा आहार ने रोकी, भरे जो प्राण मां प्राण,
सरव आ ब्रह्म मय जाणी, हुं ने को ब्रह्ममां ब्रह्म। ६४

कई अपने आहार को रोकर केवल प्राण की गति में प्राण को भरता है। खानेवाला और अन्न दोनों ही ब्रह्म हैं, ऐसा ध्यान कर वह ब्रह्म में ब्रह्म का हवन करता है।

कोइ पंचाहुति होमे, मळी आ पंच प्राणोमां,
एवा आ यज्ञनी लीला, उगारे कूप खाणोमां। ६५

कई पञ्च प्राणों में पञ्चाहुति (प्राण, पान, अपान आदि) देकर हवन करता है। इस प्रकार यज्ञ करते रहने से व्यक्ति गहरे खड्ड में गिरने से बच जाता है।

परन्तु माहरूं यज्ञ, जुओ आ ज्ञाननी अमी,
भया कर्मो कुकर्मो ने, अकर्मो होमनो लमि। ६६

दुनियाँ के व्यक्ति ऐसा यज्ञ भले ही करते रहें परन्तु मेरा यज्ञ क्या और कैसा है, यह सुनो। मुझे तो इस विश्व में ईश्वर समरूप से भरा हुआ है, ऐसे ज्ञान की अग्नि में सब कर्म, अकर्म और कुकर्म का हवन कर देने की लगन लगी है।

अने सन्देह ने शंका, तणा पशु यज्ञमां बांधी,
करूं बलि, ज्ञानना शस्त्रे, प्रभू प्रिय योगने सांधी। ६७

प्रत्येक हवन के अन्त में पशु या कूष्माण्ड की बलि देने की प्रथा है, परन्तु ईश्वर का प्रिय सङ्ग प्राप्त करने के लिये मैं तो ऊपर कहा हुआ ही यज्ञ करता हूँ और उसमें सन्देह तथा शङ्का रूपी पशुओं को बाँध कर विज्ञान रूपी शस्त्र से उनकी बलि देता हूँ।

थशे ना त्याग बाहरथी, करोने अन्तरी त्याग,
बहारे छो करा कर्मो, फलाना अन्तरो त्याग। ६८

यदि कई कहे कि मैं त्यागी हूँ और मैंने सब कुछ छोड दिया है तो यह झूठी बात है। खाना-पीना, पहनना-ओढना आदि आवश्यक वस्तुओं का त्याग हो ही नहीं सकता क्योंकि उनके बिना जीवित रहना बहुत कठिन है। इसलिये उपदेशक कहते हैं कि बाहर से किसी वस्तु का त्याग नहीं हो सकता। यदि त्याग करना है तो अन्तर से त्याग करो। जैसे कोई चीज है तो है, नहीं है तो नहीं, ऐसा समझो। इस वस्तु के बिना चलेगा ही नहीं, ऐसा न मानना चाहिये। आवश्यक कर्म बाहर से भले ही करना पड़े परन्तु उसका जो फल होगा, उसका अन्तर से त्याग करो, क्योंकि उसका बाहर से त्याग नहीं हो सकता। जैसे कोई व्यक्ति नौकरी करे और पैसा न ले तो खाएगा क्या? इसलिये अन्तर का त्याग बताया गया है।

करो जो योगमां कर्मो, फसो ना शान्तिने पामो,
परन्तू जो फलो मेरां, भरो तो मृत्युने पामो। ६९

अपना मन प्रभु के चरणों में लय करने की इच्छा से जो व्यक्ति कर्म करता है, उसका मन कर्म में नहा फंसता और उसे शान्ति मिलती है परन्तु सभी स्थूल वस्तुओं की प्राप्ति के रूप में विषैला फल खाने से मृत्यु होगी।

थशे जे जीवने ज्ञान, धरे व्रत ते जगत हितनूं,
रहे ना कामना कांई, जहां देखे जगत हितनूं। ७०

जो व्यक्ति ईश्वर को प्रत्येक वस्तु में देखता है, उसका प्रत्येक कार्य ईश्वर के लिये ही होगा। जिसे उसका पूर्ण ज्ञान हो जाता है, वह जगत् के हित के लिये सब काम करता रहेगा। अपने लिये कुछ करने की उसे इच्छा ही नहीं रहेगी।

फरे अन्तर तणो जादू, जमाडे चित्तने गोती,
अखंडानन्त ना प्रेमे, रंगेलूं रम्य आ "गोती"। ७१

जब इस रीति से अन्तर का जादू मन पर असर करेगा तब अनन्त और अखण्ड प्रेम में रँगा हुआ वह रम्य 'गोती' (प्रकाश) साधक के मन के चैतन्य लक्ष्य को ढूँढ़कर उसे आनन्द का भोजन याने अमृत का पान कराएगा।

नहीं जे वासना त्यागे, न ते योगी कदी थाय,
करे ना कर्म फल त्यागी, न ते योगी कदी थाय। ७२

जो व्यक्ति भोग की इच्छा का त्याग नहीं कर सकता, वह कभी योग की साधना नहा कर सकता और जो फलों की इच्छा का त्याग कर कर्म नहीं करता, वह भी योग की साधना नहीं कर सकता।

अमारा चित्तमां मारी, तमारा चित्तमां तारी,
रमे जो वृत्तियो कारी, कदी ना योगमां जारी। ७३

मेरे मन मे मेरा स्वार्थ और तुम्हारे मन में तुम्हारा स्वार्थ—इस

प्रकार की कठिन वृत्तियाँ जब तक मन में रहेंगी तब तक मन योग में स्थिर नहीं हो सकता।

छुटे जो वासना विषयी, अने आसक्ति कर्मोनी,
तथा संकल्प संन्यासी, महा योगीश ते जोनी। ७४

योगी बनने में जो बाधाएँ उपस्थित होती हैं, उन्हें ऊपर बताया गया है। अब योगी कौन बन सकता है, यह बताते हुए गुरुदेव कहते हैं—जिसके मन की विषय-रूपी वासना और कर्मों के फलों की आसक्ति छूट जाती है और जिसके सम्पूर्ण सङ्कल्प ईश्वर के निमित्त ही होते हैं, अपने लिये नहीं, वही महायोगी बन सकता है।

वधे निज कर्मथी आगळ, हटे निज कर्मथी पाछळ,
पोते छे शत्रु पोतानो, हणे पोते करी छलबल। ७५

व्यक्ति अपने ही कर्मों से आगे बढ़ता है और अपने ही कर्मों से पीछे हटता है क्योंकि अपना मन की हुई गलती को कभी स्वीकार नहीं करता। इसलिये अपना मन अपना ही शत्रु होकर अपने को धोखे में डालकर मार डालता है।

थयो जे आतमा तृप्त, भजीने ज्ञान कूटस्थ,
समत्वे सर्वने देखे, महा योगीज ते मस्त। ७६

जो आत्मा गुप्त ज्ञानरूपी भोजन से तृप्त हो गई है, वह सबको बराबर सम दृष्टि से देखता है और ऐसी आत्मावाला व्यक्ति बहुत ऊँचा मस्त योगी होता है।

ठरी दृढ आसने बेसी, रहो अन्तर सदा जागी,
वहारेथी वहो अंदर, करीने चित्त वैरागी। ७७

अपने मन को शान्त कर दृढ़ आसन से बैठ कर सदा अन्तर में जाग्रत रहो और मन को झूठी तरंगें उठाने से रोको। जो मन बाहर

के विषयों के स्थूल पदार्थों में वह रहा है, उसके प्रवाह को अन्तर की ओर उलटा कर चित्त को राग से विरक्त करके अथवा बाहर के विषयों से विरक्त-चित्त होकर उसे अन्तर की ओर बढ़ाओ।

जुओ अन्तर अनन्तात्मा, तणो आ दिव्य ज्योतीने,
रहो आनन्दमां डूबी, थइ गर्कीव गोतीने। ७८

अपने अन्तर में अनन्त आत्मा की दिव्य ज्योति को देखो और वह दिव्य पदार्थ को ढूँढ़कर आनन्द में डूब कर एकाग्र बन जाय।

घणुं खाशो वधारे मां, घणुं सूशो वधारे मां,
रहो युक्ताचरणमां, भोगशो भोगो वधारे मां। ७९

योग के अभ्यासी को बहुत नहीं खाना चाहिये और उसे आलसी बनकर पड़ रहना या सोना नहीं चाहिये। उसको युक्त आचरण करना चाहिये और बहुत भोग न भोगना चाहिये।

धरीने धारणा एवी, जगावो अन्तरे भेदी,
गुरूना शब्दमां जागो, रखे भ्रम भेद दे छेदी। ८०

उसको अन्तर के भेदन-द्वारा ऐसी धारणा स्थिर करनी चाहिये, जिसमें मन गुरु उपदेश के प्रति जाग्रत रहे और उसमें भ्रम-भेद घुसने न पाये।

महा आनन्द ते जादू, कहे क्यां शब्द मां कोई,
पळेना तत्वथी तत्वी, बतावे अनुभवी कोई। ८१

गुरु के उपदेश का मनन करते हुए अपने ध्येय से विचलित न हो। यह महा आनन्द से भरा हुआ एक जादू है, जिसका शब्द-द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। जो व्यक्ति तत्वों का जाननेवाला अनुभवी होगा, केवल वही उसको बता सकता है।

नथी आ विश्वमां तेथी, वधी ने लोभ क्यां गोतो,
महा आनन्दमां पेसी, पछे क्या दु.ख शूं गोतो। ८२

इस आनन्द को प्राप्त करने से बढ़कर इस जगत् में और कोई लोभ या आकर्षण किसी वस्तु में नहीं मिलेगा क्योंकि जिस साधक को यह महा आनन्द प्राप्त होता है, उसे किसी भी प्रकार का दुख नहीं होता।

अरे जो वज्र फाटे आमथी, पण ते चळे शाना,
थया जे मस्त दीवाना, चरण नख ज्योतिमा 'माना'। ८३

जो साधक मा के चरणों के नख की ज्योति में अर्थात् अपने उच्च ध्येय में मस्त—पागल बनता है, वह अभ्र से वज्र के गिरने पर भी मोहमाया के चक्कर में नहीं फँसता।

तपस्वीथी वधु योगी, वधारे ज्ञानथी पण ते,
वधु कर्मो थकी योगी, सदा आनन्दमां जन ते। ८४

उपवास करनेवाले या देह के दमन करनेवाले तपस्वी से *योगी* अर्थात् जिसका चित्त समत्व से भरा हुआ है, श्रेष्ठ है। इतना ही नहीं, वह ज्ञानी और कर्मयोगी से भी श्रेष्ठ है। वह हमेशा अपने आनन्द में मस्त रहता है।

कहाडो दिव्यता अभ्यास, ने वैराग्यथी गोती,
पराये पेस ऊंडामा, जडे झळ झळ थतुं 'मोती'। ८५

इस आनन्द को प्राप्त करने के लिये यदि साधक राग से रहित होकर अपने द्वित्व को छोड़कर अन्तर के अन्दर पूर्ण परिश्रम से चैतन्यास्तित्व के बोध का अभ्यास करेगा तो उसको मोती अर्थात् चैतन्यास्तित्व का झलझलाता हुआ प्रकाश दीखेगा।

भरेलो विश्वनो स्वामी, विभू आ ओतने प्रोत,
अहा अव्यय, अने अविभक्त, रूपे दिव्य ते जोत। ८६

अब चैतन्यास्तित्व के सम्बन्ध में गुरुदेव कहते हैं—इस विश्व का स्वामी ईश्वर दिव्य ज्योति रूप से अणु अणु में अव्यय और समरूप से ओत-प्रोत भरा हुआ है।

जुओ आ सात्विकी ज्ञान, कळे जो मोक्ष पामे ते,
नहीं तो विश्वना चक्रे, चणायो क्षोभ पामे ते। ८७

यह सबसे बड़ा सात्विकी ज्ञान है। जो साधक उसको जानता है, वह मोक्ष पद को प्राप्त करता है और जो उसे नहीं जानता, वह विश्व के चक्र में फँसा रहकर क्षोभ को प्राप्त करता है।

प्रकृति आ आतमा तलनी, जणाये स्थूलना रूपे,
जुओ नवधारमां व्हेती, गणाये भूलना कूपे। ८८

जैसा ऊपर कहा गया है, उसके अनुसार जब ईश्वर सब अणुओं में ओत-प्रोत है, तब न्याय की दृष्टि से जैसे जान या अनजान में भी यदि अग्नि में हाथ लग जाय तो वह जल जायगा, वैसे ही प्रभु सब जगह है तो अपने हृदय में भी है तो उसे जानकर मुक्त हो सकते हैं तो न जानकर मुक्त क्यों नहीं हो सकते? इस शङ्का का समाधान यही है कि सात्विकी ज्ञान प्राप्त करके ही मुक्ति पा सकते हैं अन्यथा नहीं। इस विषय को समझाते हुए गुरुदेव कहते हैं—आत्मा—चिद् शक्ति की गहरी गति के कारण प्रकृति स्थूल के अन्दर आवरण-रूप से नौ धाराओं में बहती हुई दीखती है।

गणो भू जल अनल वायु, तथा आकाश मन बुद्धी,
तथा चित्त ने अहम्मूजे, नवे नव मागनी शुद्धी। ८९

शुद्ध गति में से जागती हुई इन नौ धाराओं के नाम भू, जल, अग्नि, वायु, अवकाश, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार हैं।

नवे आ रूप छे अपरा, प्रकृति नव चंडिका रूप,
अने चैतन्यनो भाव, कहेवाये परा रूप। १०

प्रकृति के दो मूल प्रवाह हैं—'अपरा' और 'परा'। अपरा में प्रकृति का प्रवाहात्मक चिद् भाव है और परा में ज्ञानात्मक चिद्भाव है। ऊपर कही हुई नौ धाराएँ अपरा अर्थात् अविद्या हैं और लोग उन्हें नवचण्डी* के नाम से जानते हैं।

* नवचण्डी अर्थात् नवदुर्गा के नाम ये हैं—

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठ कात्यायनीति च।
सप्तमम् कालरात्री च महागौरीति चाष्टकम्॥
नवमं सिद्धिदा प्रोक्ता नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः।

प्रकृति के दो अङ्ग हैं—एक क्रियात्मक और दूसरा तत्वात्मक। प्रथम शैलपुत्री प्रकृति का क्रियात्मक भाव है और भू तत्वात्मक भाव है। शैलपुत्री अर्थात् पहाड़ की कन्या। पहाड़ भूतत्वात्मक है। इसलिये पहाड़ की कन्या याने स्थूल से उत्पन्न हुई गति। द्वितीय ब्रह्मचारिणी अर्थात् जलतत्व को हस्तगत रखनेवाली शक्ति। ब्रह्मचारी याने जो वीर्य को स्खलित न होने दे। वीर्य मूल जल है। वीर्य रक्त में से बनता है अर्थात् रक्त का रूपान्तर है। इसलिए जो जल को बरफ बनाकर रखे, वह ब्रह्मचारिणी। ब्रह्मचारिणी प्रकृति का क्रियात्मक अङ्ग है और जलतत्वात्मक है।

तृतीय चन्द्रघण्टा=अग्नि। चन्द्र में सूर्य से माँगकर लिया हुआ

परा विद्या अने अपरा, अविद्या नामथी बोले,
परा ते सर्वनू बीज, विभूती रूपथी डोले। ६१

परा का नाम विद्या है और अपरा का नाम अविद्या। अपरा का लक्ष्य क्रियात्मक है और विश्व की सब विभूतियाँ परा विद्याएँ हैं।

प्रकाश है। उसमें मूल प्रकाश नहीं है। उसमें जलती हुई अग्नि नहीं है परन्तु गुन अग्नि है। घण्टा याने अग्नि है पर दीखती नहीं है। उसमें पृथक्करण करने की शक्ति है। इसलिये चन्द्रघण्टा प्रकृति का क्रियात्मक अङ्ग है और अग्नितत्वात्मक है।

चतुर्थ कूष्माण्डा = वायु। क्योंकि कूष्माण्ड याने गतियुक्त अण्ड वायु पैदा करता है। इस कारण कूष्माण्ड प्रकृति का क्रियात्मक अङ्ग है और वायुतत्वात्मक है।

पञ्चम स्कन्दमाता अवकाश तत्व है। नवचण्डी में एक तरफ चार कन्याएँ और दूसरी तरफ चार कन्याएँ तथा बीच में स्कन्दमाता है। उसमें मातृभाव है और वह सम्पूर्ण तत्वों का मूलबिन्दु है। एक तरफ तो भू, जल, अग्नि, वायु ये चार हैं और दूसरी तरफ मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार। तत्व लक्ष्य से यह अवकाश-जननी कही जायगी और क्रियात्मक लक्ष्य से स्कन्दमाता जननी कही जायगी। सब प्रकार के तत्वों का आधार-बिन्दु अवकाश है और क्रिया-लक्ष्य में आधार जगद्धात्री है। इसलिये स्कन्दमाता प्रकृति का क्रियात्मक अङ्ग है और अवकाश तत्वात्मक है।

षष्ठ कात्यायनी = मन क्योंकि कात्यायनी याने विश्व सञ्चालिका। विश्व को जीवन लक्ष्य से सञ्चालन करनेवाला मन है। जीवन और मृत्यु का कारण मन है। इसलिए मन के भाव को कारण शक्ति याने विश्वकारिणी शक्ति कात्यायनी कही जाती है। प्रकृति का क्रियात्मक अङ्ग कात्यायनी है और तत्वात्मक मन है।

सुणो अपरा त्रिगुण भेदी, महाशक्ति कहेवाय,
मुके गति गूण त्रण गुणमां, वहेंचीने परोवाय। ६२

तीन गुणों की क्रिया का सञ्चालन करनेवाली महाशक्ति अपरा विद्या है। वह तीनों गुणों में शक्ति का सन्चार करती है और तीनों में पिरोई हुई है।

नचावे विश्वने डोरे, धरीने आ महा माया,
गहे जो शर्ण विद्यानी, छुटे ते तेहनी दाया। ६३

सप्तम कालरात्रि=बुद्धि। रात्रि=शून्य, अन्धकार। अन्धकार काल का सन्चार करता है। वह कालरात्रि देह में समय-सञ्चालिता बुद्धि है। समय का निर्णय करनेवाली बुद्धि है। काल-सञ्चार-क्रिया अविद्या का कालरात्री रूप है। कालरात्री प्रकृति का क्रियात्मक अङ्ग है और बुद्धि तत्वात्मक है।

अष्टम महागौरी=चित्तत्व। विश्व का ज्ञान देनेवाला काश गौर कहा जाता है। अर्थात् वह काश, जिससे मन और बुद्धि में विश्व का याने चिद्तत्व का भान होता है। वह गौर कहा जाता है। इसलिये प्रकृति का क्रियात्मक अङ्ग महागौरी और चित् तत्वात्मक है।

नवम सिद्धिदा=अहङ्कार। अह से अपना अस्तित्व व्यक्त होता है और जब अस्तित्व का भान होता है तब विश्वास्तित्व का अनुभव होने से सिद्धिदा प्रकृति का क्रियात्मक अङ्ग है और अहंतत्वात्मक है।

इस प्रकार नवचण्डी अपरा के भाव हैं और दूसरा जो चैतन्य का भाव है, वह परारूप कहा जाता है। पग याने विद्या के दस भाव हैं। उसमें भी क्रियात्मक और तत्वात्मक दोनों भाव हैं। क्रियात्मक में पञ्च-तन्मात्रा और पञ्चवायु का समावेश होता है तथा तत्वात्मक में पञ्च-कर्मेन्द्रियाँ और पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ हैं। ये भाव दस महाविद्याओं में से जानते हैं।

ईश्वर से ओत-प्रोत होने और अपने हृदय मे भी होने पर हमने उसे प्राप्त नहीं किया। इसलिये यह महामाया याने अविद्या सारे विश्व को रस्सी में बाँधकर कठपुतली की तरह नचाती है। जो व्यक्ति अविद्या की उपासना करते हुये विद्या की शरण में जाता है, वह अविद्या की दया प्राप्त कर उसके बन्धन से छूट जाता है याने प्रभु को प्राप्त करता है।

जुओ को आर्त थइ आवे, थइ जिज्ञासु को भावे,
कोइ अर्थार्थिने दावे, थई ज्ञानी भजे भावे। ६४

प्रभु की शरण कैसे ली जाती है, इस सम्बन्ध में गुरुदेव कहते हैं कि कोई व्यक्ति दुःखी होकर तो कोई जिज्ञासु होकर, कोई अपना मतलब साधने के लिये तो कोई ज्ञानी बनकर प्रभु को भजता है।

मळे ते सर्वने छाया, भरी दाया महा तपथी,
परन्तु ज्ञानि छे व्हालो, भजे भक्ति तथा तपथी। ६५

उन सबों को प्रभु की बड़े तप से भरी हुई और दयामय छाया मिलती है पर उन सबों में से जो प्रेम और तपश्चर्या से अपने आत्म-कल्याण के लिये प्रभु को भजता है, वह ज्ञानी प्रभु को बहुत प्रिय है।

यदि ते कामथी ध्यावे, पूरे ते कामना तेनी,
अने निष्कामना भावे, भजे गति मुक्ति छे तेनी। ६६

जो कोई अर्थार्थी होकर अपनी कामना के लिये प्रभु को भजता है, उसकी कामना पूर्ण होती है और जो निष्काम भाव से प्रभु को भजता है, वह जन्म मरण रूपी फेर से छूट जाता है।

छुटे अधिभूतने अधिदेव, पण अधियज्ञना छेक,
महा माया कृपा तारी कहाडे मोहथी छेक। ६७

उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिये जीव को तीन प्रकार की सीढ़ियाँ

मिलती हैं। एक अधिभूत याने जगत् के कर्मों की—पारस्परिक सम्बन्ध—ऋणानुबन्ध की। दूसरी अधिदैव याने पुण्य की। ये दोनों सीढ़ियाँ ऊपर जाते ही छूट जाती हैं पर तीसरी सीढ़ी अधियज्ञ याने प्रभु के साथ का सम्बन्ध छूटता नहीं है। प्रभु के साथ के सम्बन्ध में भक्त प्रभु की दया प्राप्त करके अपनी आत्मोन्नति करता है और आत्मोन्नति-द्वारा जो कुछ उसे मिलता है, वह उसे प्रभु के चरणों में अर्पित करता है। इस प्रकार जो कुछ उसे मिलता रहता है, उसे वह प्रभु के चरणों में रखता जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति की उन्नति क्रमशः आगे बढ़ती है। इस तरह अधियज्ञ करनेवाला भक्त महामाया की कृपा प्राप्त कर मोह से छूट जाता है।

जुओ आ विश्व दरियाना, किनारे पारमां गोती,
झरे जो प्रेमनी सोती पडे त्यां आमथी 'मोती'। ६८

विश्व-समुद्र में ढँढ़ने से सीप, शङ्ख, आदि मिलते हैं पर तुम्हारे चित्त में—हृदय में यदि प्रेम का झरना बहता होगा तो उसमें के आम में से स्वाती का बूँद टपक कर मोती मिलेगा याने अन्तर में प्रकाश दीखेगा।

गल गल गटके, भल भल भटके।
माया मटके, सब जग सटके॥
काया कटके, खलबल खटके।
गलमल घटके, चरमर चटके॥
बाया छटके, झटपट झटके।
पडते फटके, टकते टटके॥
तरते तटके, डोलो डटके।
नरकर नटके, पथ पर पटके॥

फोडे फटके, जाजड लटके।
हरहर रटके, कभी न अटके॥
विरथा भटके, रहजा हटके।

माया विश्व को निगल जाती है। बड़े-बड़े लोग भटकते रहते हैं याने उनको मार्ग नहीं मिलता। माया के भटकने से सारा जगत् बदल जाता है। काया—देह का क्षय होता है। षड्रिपुओं का बल विघ्न डालता है। गले तक देह में मल भरा हुआ है। देह टूटती है, प्रभु दूर रहता है। माया जल्दी से झटका मारती है और उसे माया की मार मारती है पर जो सचेत होता है, वह सिद्ध हो जाता है। किनारे पर चलनेवाला पार हो सकता है। इसलिये हिम्मत से मार्ग पर चलो। व्यक्ति का हाथ नट के हाथ में है। माया मार्गस्थ व्यक्ति को भी नीचे गिराती है और उसे मारती है। इससे मार्गस्थ व्यक्ति भी जन्म-मरण के फेर में लटकता रहता है परन्तु हर-हर के स्मरण करने से कोई अटकता नहीं है। जीव वृथा भटकता है इसलिये इस माया के मार्ग से हटकर रहो।

अध्यात्म योग

अस्तित्व मां असत छे, जो क्यांय सत्य पण छे,
ते सत्य आ जमा मां, तो भास चार जण छे। ६६

दुनियाँ के व्यक्तियों में जब से कुछ समझ-शक्ति आई है तब से सत्-असत् का झगड़ा चलता रहा है। वेदान्त ने चिदात्मा को सत्य बता कर माया को 'असत् है, भ्रम है, झूठ है' कह दिया। दूसरी तरफ एक उपनिषद्कार ने कहा है कि—

'असतमिदमग्र आसी, तस्मात् सत् अजायत।'

याने असत् में से सत् जागता है क्योंकि प्रकृति की दो गतियाँ हैं—अविद्या और विद्या। जो कुछ स्थूल वस्तु दीखती है, वह अविद्या है। यदि अकेले तत्वीकरण के भाव में से ही जगत् की उत्पत्ति मान लें और साथ में सत् न हो तो स्थूल पदार्थ का रूपान्तर नहीं हो सकता। इसलिये गुरुदेव कहते हैं कि विश्व असत् भले ही दीखे पर उसमें सत् ज़रूर है। इस सत्य का भान चार पदार्थों (मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार द्वारा होता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार की चेतन्य-समष्टि को जीव कहते हैं और इस जीव को 'ईश्वर है'—ऐसा भान होता है। ईश्वर है—उसका कारण व्यक्तित्व=जीव है। यदि जगत् में व्यक्ति का अस्तित्व न होता तो ईश्वर के महत्त्व को महत्ता न मिलती क्योंकि किसी ने कहा है—

> अधम न होते जगत् में, किन्हें तारते राम।
> अधमन ने तुमको दिया, अधम उधारण नाम॥

> **श्री ब्रह्म तत्त्वभावो, अध्यात्म नाम जेनूँ,**
> **अधिभूत भूत दावो, अधियज्ञ विश्व जेनूँ। १००**

ब्रह्म की तीन क्रियाएँ हैं—उत्पत्ति, स्थिति और लय। ब्रह्म का यह स्वभाव आध्यात्मिक है, जीवन-मण्डल याने जीव अधिभूत कहे जाते हैं और जिससे यह विश्व बना है याने जिसका यह विश्व है, वह अधियज्ञ कहा जाता है।

> **अध्यात्म शक्ति विद्या, अधिभूत जीव भोगे,**
> **अधिदैव अन्तरी जे, चिद आत्मा न भोगे। १०१**

विद्या शक्ति, जिसमें विश्व का ज्ञान होता है, अध्यात्म है; जीव सुख और दुःख भोगता है, यह अधिभूत है और जो शक्ति चित् चैतन्य या आत्मा है तथा भोग से परे है, यह अधिदैव है।

अधियज्ञ विश्व स्वामी, वेदो कहे पुरुष जे,
जे ओत प्रोत विश्वे, छे सांख्यनो पुरुष जे। १०२

अधियज्ञ याने विश्व स्वामी को वेद पुरुष कहता है। वह व्यापक रूप से विश्व में ओत प्रोत है। सांख्य शास्त्र ने भी पुरुष कहकर उसका वर्णन किया है। वह असंख्य जीवों का याने प्रत्येक जीव का बड़ा पुरुष है।

जे जीवने जमाडे, ने उच्चमां रमाडे,
ते कर्मनी कमाणी, कोरे खसी खमाडे। १०३

वह चिन् चैतन्य पुरुष जीवों का पोषण करता है, उनकी उन्नति करता है और स्वयं अलग रहकर उनकी कमाई का उनसे उपभोग कराता है।

आ काय कर्मथी जीवी, कर्ममां हणाय,
जो जीव थामलामां, निज कर्मना चणाय। १०४

यह काया अपने कर्म से जीती है, अपने ही कर्म से मरती है और अपने कर्म के खम्भे में आप ही बँध जाती है।

जे कर्म ते करे छे, तेथी चडे पडे छे,
जो कर्म थाय सारां, तो स्वर्गमां अडे छे। १०५

जीव जैसा कर्म करता है, उसी के अनुसार वह ऊपर या नीचे जाता है। अच्छा कर्म करने से व्यक्ति स्वर्ग में जाता है।

पण पंथ पाळ लांबी, जाता गणां पडे छे,
जो कर्म बीज बाळे, तो दोडतो चडे छे। १०६

जीवन के मार्ग की पगडण्डी बहुत लम्बी है। उसमें सुख की इच्छा करते-करते प्रभु के चरणों में जानेवाले व्यक्ति गिर जाते हैं परन्तु कर्म के बीज को जलाकर याने द्वित्व को समान जानकर समत्व

रखे तो कर्मबीज जल जाता है और जीव बहुत जल्दी उन्नत होता है और उसे प्रभु का साक्षात्कार त्वरित होता है।

जे भाव अन्त धारी, पडशे स्वदेह तारी,
तू तेज भावना मां, नव देह अन्य धारी। १०७

जीव जीवित रहने तक कर्म करता है और उन कर्मों के भावों को अपने में अन्त तक भरता है। जिस अन्तिम भावना के साथ उसकी देह गिरती है, उसी भावना को लेकर वह नई देह फिर धारण करता है।

श्री ब्रह्मना स्वभावे, ॐ कार नाम भावे,
ते विश्वना विभूती, त्रणे किया बतावे। १०८

ॐ कार प्रभु का नाम है क्योंकि वह प्रभु के स्वभाव को *दिखानेवाला है। ॐकार में विद्यमान उत्पत्ति, स्थिति और लय ये* तीनों क्रियायें विश्व के विभु की क्रियायें हैं।

ह्रीं कार बीज माया, गति चक्रबीज तावे,
जो चित्तमां रमे तो, माया नहीं सतावे। १०९

ह्रींकार मायाबीज है। ह्रींकार ह्+र्+ई+म का बना हुआ है। जैसे प्रत्येक व्यञ्जन के हृदय में हकार है वैसे विश्व के हृदय में हकार ईश-भाव में व्यापक है। प्रकृति के प्रवाह में विद्यमान चिद्भाव हकार के नाम से जाना जाता है। ह्रींकार चैतन्यात्मक बीज है। वह चैतन्य-मय हृत, अग्नि, शक्ति और गति मिलकर बनता है यानी उसकी उत्पत्ति अग्न्यात्मक चित् की उष्णता और शक्ति से गतियुक्त बनने से होती है। चिद्गति के संघर्षण से सारा विश्व चलता है। उसकी क्रिया के भावों का यानी अग्नि, चिद्, गति, और संघर्षण—इन चार वस्तुओं के भावों का यदि चिद् ग्राही बन जाय तो उसको माया सताती नहीं है।

षटचक्र मां फरी ते, शिर चक्र मां सिधावे,
दल बीज बे पसारी, निज सत्वमां सिधावे। ११०

इस विश्व के षट्चक्रों—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः और तपः—का भेदन करके जीव तप में=शिरचक्र में स्थिर होकर सत्य में=त्रिपुटी-चक्र में जाता है। त्रिपुटी चक्र की दाहनी ओर 'सं' याने शक्ति का भाव है और बाईं ओर 'हं'=शिव का भाव है। इन दोनों भावों में लय होकर जीव श्रेयत्व को पाता है।

लय थाय शुक्ल ते छे, जे ईश विश्वनो ते,
श्री कृष्ण नाम धारी, रमतो स्वविश्वमां ते। १११

अस्तित्व के दो पक्ष कहे जाते हैं—शुक्ल और कृष्ण। गौर वर्ण के भगवान् शिव, जो विश्वेश्वर याने विश्व के ईश्वर हैं, वह शुक्ल पक्ष है और काले रङ्ग के भगवान् कृष्ण, जो विश्वात्मा याने विश्व के आत्मा, विश्व में व्यापक हैं, वह कृष्ण पक्ष है।

आ जो पुरुष प्रभूने, अव्यक्त व्यक्तमाया,
क्यां जीव जो जणाये, जे देख तेज माया। ११२

इस विश्व के स्वामी पुरुष प्रभु को तू देख। इस विश्व में जो अव्यक्त है, वह प्रभु है और जो व्यक्त है, वह माया है। जो नहीं दीखता, वह प्रभु है और जो दीखता है, वह माया है। ऐसे इस विश्व में अव्यक्त और व्यक्त दो ही हैं, फिर जीव कहाँ? इस प्रकार स्वयं प्रश्न कर गुरुदेव आप ही बताते हैं कि जीव तो बेचारा अव्यक्त और माया दोनों के पाटों के बीच में गेहूँ की तरह पिस जाता है।

ते विश्व मां समायो, तेमा न विश्व देखूँ,
आ योग योग स्वामी, हुँ क्यां जहाँ न देखूँ। ११३

यह अव्यक्त प्रभु सारे विश्व में समरूप से भरा हुआ है पर विश्व

उसमें नहीं है। वह विश्व में समाया है तो भी उसको विश्व के विकार हानिकर नहीं हो सकते। इस योग का, हे योग के स्वामी, तेरे सिवा कोई अनुभव नहीं कर सकता। ऐसी कौन वस्तु है? कौन सा स्थान है, जहाँ तुझको विश्व के नियन्ता रूप से न देखूँ? क्योंकि जहाँ तहाँ तू ही तू भरा हुआ है।

> त्यां उँच निच क्यां छे, हूँ तो समत्व देखूँ,
> जे उँच निच भासे, भ्रम बुद्धिनोज देखूँ। ११४

अब प्रभु जब सबमें समरूप से भरा है तब फिर ऊँच और नीच का भेद कहाँ से आया? सब जीव प्रवाह में बहते हैं और सबको मैं समरूप से देखता हूँ। ऐसा होने पर भी यदि ऊँच-नीच दीखे तो यह केवल बुद्धि का भ्रम है, इसके सिवा कुछ नहीं।

> ना देव तत्व जाणे, ना देव देवना जे,
> जे जाणतो प्रभू ते, छे एक विश्वमां जे। ११८

हे प्रभु, तेरे व्यापकत्व को याने समत्वरूपी तत्वों को देव का देव भी नहीं जान सकता। उस परम लक्ष्य को यदि कोई जान सकता है तो हे प्रभु, वह तू ही एक है।

> बुद्धी जणाय जेथी, ते ज्ञान मोह ममता,
> शम, दम, क्षमा असत ने, सुख दुःख सत्य समता। ११६

ज्ञान, मोह, ममता, शम, दम, क्षमा, असत्, सत्, सुख, दुःख और समता के साथ के उत्पर्षण में ही सत्—असत् का विवेक याने सदसद्-विवेक बुद्धि उत्पन्न होती है।

> उत्पत्ति, नाश, भय, तप, सन्तोष यश अहिंसा,
> क्या दान, शक्ति, अभया, अपशोक जीव हिंसा। ११७

उत्पत्ति, नाश, भय, तप, सन्तोष, यश, अहिंसा, दानशक्ति, अभया, अपशोक, जीवहिंसा—

छे भाव दोष गुण ते, माया तणा विकारो,
जागे जणी जणावे, विद्या घणा विकारो। ११८

ये सब गुण दोष माया के विकार कहे जाते हैं। इनमें जो गुण हैं, ये विद्याजनित विकार हैं और जो अवगुण हैं, ये सब अविद्याजनित विकार हैं। माया में विद्या और अविद्या दोनों का समावेश होता है।

जे बुद्धि योग फावी, अन्तर जइ विकासे,
तम मोह अन्धकारे, ते जोत थइ प्रकाशे। ११९

जो बुद्धि योग में युक्त होकर अन्तर में विकास करती है, वह विश्व के तमरूपी मोह के अन्धकार में ज्योतिरूप प्रकाश देती है।

जे स्थूल सूक्ष्ममां, मां, ज्यां त्यां रही प्रकाशी,
तेने कहे अविद्या, विद्या विभूति काशी। १२०

जो जगत् जननी जहाँ-तहाँ स्थूल सूक्ष्म में प्रकाश कर रही है; वह अविद्या है और जो विभूति देनेवाली है, वह विद्या है।

अव्यक्त व्यक्त भावे, गुरू रूपमां पधारी,
उपदेश देशकीने, आपे अधार धारी। १२१

अब पात्रत्व का भाव बताते हुये उत्तम गुरु कैसे मिले और कब मिले, इस सम्बन्ध में उपदेशक कहते हैं कि जब साधक पात्र बनता है तब ईश्वर लक्ष्य या कोई उच्च व्यक्ति गुरु-लक्ष्य से व्यक्त भाव में याने देह धारण करके साधक को उपदेश करता है। इससे साधक को आधार मिलता है और वह उच्च मार्ग में प्रविष्ट होता है।

ते शब्द मन्त्र दीपे, दिसे प्रकाश पंथे,
पंथी मुंझाय ना जो, फर मालीयो स्वकथे। १२२

ऐसा गुरु शब्दमन्त्र से साधक को प्रेरित करता है। उससे साधक का चित्त चैतन्य होता है। उसको मार्ग में प्रकाश दीखता है और गुरु ने उसका हाथ पकड़ा है इसलिये पंथी (साधक) घबराहट से डरता नहीं है।

हूँ ब्रह्म बोलि लटके, गुरू हाथ मालियो ना,
तो कष्ट थाय भारूं, कर काल मालियोना। १२३

पर, दुनियाँ में तो वेदान्त आदि पुस्तकों का आश्रय लेकर 'मैं ब्रह्म हूँ' याने 'अहं ब्रह्मास्मि' कहनेवाला व्यक्ति अधर ही में लटकता है। अगर सद्गुरु उसका हाथ न पकड़े तो वह कालरूप माली के हाथ में पड़कर बहुत कष्ट भोगता है क्योंकि—

दीवो देखाय त्यांना, माया झंझोर बामे,
अन्धार धार पावक, देखे न पाय दामे। १२४

उसका हाथ काल के हाथ में होने से उसको प्रकाश नहीं दीखता और जोरों से चलते हुये मायारूपी पवन में वह फँस जाता है। अँधेरे में कुछ नहीं दीखता, इससे उसके पैर मार्ग में पड़ी हुई अग्नि में पड़कर जल जाते हैं।

जो खाड़ होय माया, धक्को दइ किनारे,
पड पेस अन्ध दरमां, त्यां पच्च कोण तारे। १२५

मार्ग में षड्रिपु-रूपी पत्थर, काँटे, खड्ड, कीचड़े आदि अनेक विघ्न हैं। मार्गदर्शक गुरु के न होने से व्यक्ति को विषय-भोग की लालसा में पड़ते देखकर माया उसे धक्का देकर खड्ड में गिरा देती है और आप अलग हो जाती है। फिर उस अन्धकार में व्यक्ति को बचानेवाला कोई नहीं रहता।

माटे रहो गुरूना, चरणे धरी आधारे,
जो मोह मारशे तो, गुरूनी दया उधारे। १२६

इसलिये साधक को गुरु के चरण पकड़कर उसके आधार पर रहना चाहिये। तब यदि उसको विश्व का मोह सतायेगा या फँसायेगा तो गुरु की कृपा उसको उससे बचा लेगी।

अभ्यास श्रेष्ठ छे पण, ना ध्यानथी वधारे,
तेथी वधू थई जो, ज्ञानी समस्त धारे। १२७

अब उपदेशक कहते हैं कि अभ्यास करना श्रेष्ठ है पर गुरु-चरण की ज्योति में ध्यान रखना और भी श्रेष्ठ है। उससे साधक को विश्व के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

जग कर्म योग सारो, ज्ञानी थकी वधे तो,
कारण क्रिया बिनाना, जोवे न ते बधे तो। १२८

कर्मयोग ज्ञानयोग से उत्तम है क्योंकि उसमें निष्काम कर्म करने से कर्म जल जाते हैं, याने, कर्म लगते या बढ़ते नहीं है। इसलिये उस कर्म को भोगना भी नहीं पड़ता।

मारूं ममत्व माया, हूं द्वेष वैर त्यागी,
कर काम विश्व हितना, गुरू शब्द ध्यान जागी। १२९

साधक को गुरु के कहे हुए मन्त्र का ध्यान करते रहना चाहिये और गुरु-उपदेश में जाग्रत रहकर विश्व-हित के कार्य करने चाहिये।

ना, था प्रसन्न स्तवने, निन्दा सूणी बळोमां,
स्थिर चित्त राख देखी, दुःख धार उछळो मां। १३०

कोई तुम्हारी प्रशंसा करे तो उसको सुन कर प्रसन्न न होना और निन्दा करे तो उससे जलना नहीं चाहिये परन्तु चित्त को स्थिर रखकर जो दुख पड़े, उससे घबराना नहीं चाहिये।

एवे रहो जडे तो, रममाण रम्य पोती,
ते पर चढी तरीने जो भव्य दिव्य मोती। १३१

इस रीति से गुरु-उपदेशानुसार यदि साधक चलेगा तो उसको गुरुकृपा रूपी एक सुन्दर नाव मिलेगी, जिसमें बैठकर वह पार होगा और उसे दिव्य मोती रूप प्रकाश दीखेगा।

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ—निरूपण योग

आ क्षेत्र छे तमारुं, वावो तमो लणो ते,
क्षेत्रज्ञ आप व्हाला, आ क्षेत्रने जणो ते। १३२

गीता में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ऐसे दो भाव कहे हैं। यहाँ उपदेशक ने क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ और क्षेत्रपाल—ऐसे तीन भाव बताये हैं। उपदेशक कहते हैं—यह शरीर, जिसमें कारण शरीर याने मनोमय कोष का समावेश होता है, एक क्षेत्र है। उसमें जैसा बीज पड़ेगा वैसा उत्पन्न होगा। अच्छा बीज होगा तो अच्छा उत्पन्न होगा और बुरा बीज होने से बुरा फल होगा। जीव क्षेत्रज्ञ है। वही अच्छे और बुरे बीज को बोनेवाला है।

क्षेत्रज्ञ जोतरे पण, नाणां जमीनदारी,
कर दाण ना चुकावे, तो पाक जाव सारी। १३३

खेत में खेती करने से जो कुछ पैदा हो, उसका कर यदि जमींदार को न चुकाया जाय तो वह सारी फसल जप्त कर लेता है याने जीव जो कुछ कर्म करता है, वह निष्काम न हो या प्रभु के चरणों में कर्मों को न रखे याने अर्पित न करे तो उसकी कुछ भी कमाई जमा नहीं होती और वह किये हुये कर्मों का अच्छा और बुरा फल भोगता है।

प्रभु क्षेत्रपाल पोते, क्षेत्रज्ञ जीव धारी,
जे पाक थाय तेना, नाणा गणो धरारी। १३४

जीव क्षेत्रज्ञ है और प्रभु क्षेत्रपाल है। जीव जो कुछ पैदा या कमाई करता है, उसको जमा रखनेवाला प्रभु है। जो जीव अपनी उन्नति के मार्ग पर है, उसकी कमाई को वह उसे खर्च नहीं करने देता और अपने पास ही जमा रखता है। अति आवश्यकता होने पर वह साधक को जमा हुए व्याज में से थोड़ा व्याज खर्च करने को देता है।

जब साधक देववर्ग तक पहुँचता है तब इसका भण्डारी प्रभु व्याज सहित उसकी सारी कमाई उसके सामने रख देता है। यदि साधक उसको स्वीकार नहीं करता और प्रभु के चरणों में ही उसे रख देता है तो प्रभु उसको आगे जाने का मार्ग बताता है। इस प्रकार उसकी उन्नतिरूपी कमाई चक्रवर्ती व्याज-सहित बढ़ती जाती है याने साधक आगे ही आगे उन्नत होता रहता है।

> इच्छा ने दुःख सुखो, संघात चेतना जे,
> धृति द्वेष सर्व भेगां, कहेवाय क्षेत्र आजे। १३५

स्थूल देह=मनोमय कोश तथा इच्छा, सुख दुःख-संघात, चेतन,। धारणा, द्वेष आदि जो विकार हैं, ये सब साथ मिलकर क्षेत्र कहलाते हैं।

योग

मन एक ऐसी वस्तु है, जो वृत्ति के आधार पर लटकती है। वृत्तियों में सदैव गति होती है। गति के स्वभावानुसार एक ही दृश्य या भोगवस्तु स्थिर नहीं हो सकती। गति के कारण नये नये भावों में वृत्तियाँ प्रविष्ट होती हैं और उनमें से प्रत्येक को मन भोगने लगता है। इस कारण मन में हमेशा अत्यन्त चाञ्चल्य रहता है। जैसे गति से पवन उत्पन्न होता है वैसे ही मन की अत्यन्त चञ्चलता से तम उत्पन्न होता है। इस तम के कारण अस्तित्व का विकासरूपी सूर्य क्षण क्षण आवृत्त रहता है। अस्तित्व (आत्मा) और मन के बीच में जैसे-जैसे

यह तम बढता जाता है, वैसे ही उसका प्रकाश मन पर पड़ने से रुकता है और जीव अपने काश से दूर होता जाता है। आवृत्त तम में से झलकते हुए दिव्यास्तित्व की किरणें ही व्यक्ति के मन को बुद्धि रूप से सहायक हो सकती हैं। चाञ्चल्य से बना हुआ इस प्रकार का तम जब तक कम नहीं होता तब तक उन्नति का होना सम्भव नहीं है। जब तक मध्यस्थ तम है तब तक प्रकाश्य और प्रकाश का सीधा सम्बन्ध नहीं होता। योग याने मिलना याने सीधा सम्बन्ध स्थापित होना। चाञ्चल्य का निरोध जब तक न हो सके तब तक तम कम नहीं होगा और यह सीधा सम्बन्ध भी स्थापित नहीं हो सकता।

मनोवृत्ति-निरोध के चार प्रकार हैं—राजयोग, हठयोग, लययोग और भक्तियोग। राजयोग इसलिये उत्कृष्ट माना जाता है क्योंकि दूसरे सब साधनों से उसका साधन सरलतम है। दूसरे साधन कष्ट-साध्य हैं। यम, नियम और ध्यान—ये राजयोग के तीन प्रधान अङ्ग हैं।

शरीर को किसी प्रकार का कष्ट दिये बिना सुखासन से ध्यान हो सकता है। फिर भी इस विश्व को और विषयों को अनित्य समझकर दृढ तीव्र वैराग्य उत्पन्न किये बिना ध्यान नहीं हो सकता। इसलिये राजयोग का प्रथम मन्त्र यह है—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

राजयोगाभ्यासी को प्रारम्भ में लगातार तीन मास तक इस मन्त्र का अहर्निश चिन्तन करना पड़ता है। ऐसा करने से मन को बाह्य भोगादि की अनित्यता का ज्ञान हो जाता है और उसका उनमें से राग मिट जाता है। उस समय मन की स्थिति ऐसी होती है कि मन में उचाटन होता है याने किसी वस्तु में मन रमता नहीं है। दूसरे

नीरसता का भाव बहुत बढ जाता है और आत्महत्या करने की इच्छा होती है। ईश्वर की साकारता में अश्रद्धा उत्पन्न होती है। एकान्त में मूर्छित पडे रहने की या किसी से न मिलने की इच्छा होती है। यदि उसमें कुछ विघ्न आता है तो कभी विघ्न करनेवाले पर या कभी अपने ऊपर भयङ्कर क्रोध उत्पन्न होता है। अन्नादि पदार्थ खाने की और पोषण लेने की इच्छा कम हो जाती है। कभी-कभी दौडने की इच्छा होती है और तीव्र उदासीनता कभी रुलाती है तो कभी हँसाती है। ऐसा चिह्न जब उत्पन्न होता है तब समझना चाहिये कि मन में पूर्ण वैराग्य जाग्रत हो गया है। जब ऐसा होता है तब साधक को गुरुदेव निर्गुण्डी पत्र का रस एक तोला या बड़ी लौकी के तीन तोले पत्ते का रस, मालकागनी का तेल तीन बूँद से इक्कीस बूँद तक—इनमें से कोई एक शहद के साथ अथवा श्वेत भाँग तीन माशे या शिलाजीत तीन से छः माशे कच्चा पीसकर गोमूत्र में घोलकर दिन और रात में दो बार इक्कीस दिन तक देना चाहिये। इनमें से मालकागनी, निर्गुण्डी या शिलाजीत उत्तरोत्तर अधिक उपयोगी हैं। इसके सिवा हर प्रयोग के ऊपर पाँच से इक्कीस बादाम तक पानी में घिसकर शक्कर के साथ सवेरे देना चाहिये। सन्ध्या को केवल गाय का दूध। इनके सिवा और कुछ भी खाने को न देना चाहिये। अन्न भी नहीं देना चाहिये। इस प्रकार इक्कीस दिन तक पथ्य देने से साधक का चित्त सहसा एकाग्र होने लगता है और ध्यान की धारणा उत्पन्न होती है। राजयोग के साधक को किसी भी वैषयिक और इन्द्रियों को उत्तेजित करनेवाले भाव में उतरना नहीं चाहिये। वैसे कारणों से उसे दूर ही रहना चाहिये और स्त्री का मुख नहीं देखना चाहिए। अपनी माँ को भी छः महीने तक न देखे, ऐसा उल्लेख है। छः मास के ध्यान से कुण्डलिनी जाग्रत होकर सहज समाधि हो जाती है। यदि ऐसा अनुभव होने के बाद तीन चार महीने तक ध्यान छोड़ दे तो उसको फिर पूर्वोक्त अभ्यास प्रारम्भ करना

पड़ेगा। इस भाव से इष्टदेव के गुणमय रूप का ध्यान करना पड़ता है।

कुण्डलिनी के जाग्रत होने से साधक सूख जाता है। उसके विभिन्न भाव उत्पन्न होता है। मूर्छा में पड़े रहना अच्छा लगता है। पीठ में, कमर में, विभिन्न गुदगुदी होती है। थोड़े-थोड़े समय के बाद चींटियाँ चलती हैं, ऐसा भास होता है। यदि ऐसी हालत में साधक थोड़े दिन पड़ा रहे तो उसको प्राण जाने का भय रहता है। उसकी अवधि साधारणतया १२ दिन की और उससे बढ़कर छः महीने तक की होती है। इससे ज्यादा वह जी नहीं सकता। उसको यही भान होता है कि अन्दर कोई नाड़ी टूट गया अथवा कुछ उलझ गया है। एक व्यक्ति इक्कीस दिन में ही मर गया था। यदि किसी साधक को ऐसी स्थिति का अनुभव हो तो उसे तीन तीन घण्टे पर शहद, दूध और घिता तीन तीन तोला मिलाकर देना चाहिये। निर्गुण्डी वृक्ष की तीन चार पत्तियों का चूर्ण साथ या अकेले ही चार माशे घी के साथ दिन रात में तीन बार देना चाहिये। ऊपर के इन दोनों उपचारों में एक घण्टे का अन्तर रहना चाहिये। अगर निर्गुण्डी न मिले तो हिरण या छाग का एक तोला कच्चा मांस देकर ऊपर से दो चार मांडी देनी चाहिये। त्रि-मधु को निर्गुण्डी या मांस और मांडी के साथ तीन-तीन घण्टे पर पाँच-पाँच बादाम दिन में तीन बार देना चाहिये। अन्न और नमक वर्जित हैं। इस प्रकार तीन दिन तक प्रयोग करने से साधक की मूर्छा दूर हो जाती है। फिर साधक को धीरे धीरे रेचक, कुम्भक करके मस्तिका करनी चाहिये। इससे चित्तशक्ति फिर से कुण्डलिनी के ऊपर स्थित हो जायगी। साधारण दशा में वह कुण्डलिनी के ऊपर ही स्थित होती है। परन्तु कुण्डलिनी के चलने से वह च्युत हो जाती है। ऊपर कहे हुए उपाय से वह फिर अपने स्थान पर आ जाती है और तभी साधक जी सकता है। केवल प्राणायाम से कुण्डलिनी का उत्थान नहीं होता।

वैराग्य योग

इन्द्रीना अर्थ भोगे, ना चित्त वीतरागी,
अभिमान त्याग जो तूं, तो थाय वीतरागी। १३६

जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों के भोग के लिये काम करता है और जिसका चित्त भोगों से हट नहीं गया है, उसको वैराग्य जाग्रत नहीं हो सकता। यदि तुझे अपने मन में वैराग्य को जगाना है तो अभिमान को त्याग दे।

जन्मी मरे बुढापो, ने रोग दुःख मोह,
छे दोषथी जणाया, कामादि सुख कोह। १३७

जन्म-मरण, बुढ़ापा, रोग, दुख, मोह, काम, क्रोध, सुख—ये सब मन के दोष से उत्पन्न होते हैं।

आ पुत्र दार म्हारां, आ गेह देह मारूं,
हा, शोकमां डुबावे, थाये न अन्त तारूं। १३८

लोग कहते हैं कि सन्तान, स्त्री, धन, दौलत सब मेरे हैं परन्तु ये सब अन्त में उनके नहीं होते। ये उन्हें केवल मोह और शोक में डुबानेवाले होते हैं और अन्त में इन्हें छोड़ने में दुख होता है।

ज्ञाता छे जीव तारो, ने ज्ञान सत्य विद्या,
आज्ञेय विश्व वर छे, द्वारा जणाय विद्या। १३९

तुम्हारा जो जीव है, वह ज्ञाता है। सत्य विद्या ज्ञान है और विश्व ज्ञेय है, उसके द्वारा विद्या जानी जाती है।

द्रष्टा अनेऽनुमन्ता, भर्ता प्रभू तमे छो,
परमात्म रूप तारूं, सारे भर्या तमे छो। १४०

हे प्रभु, तू द्रष्टा है, तू विश्व को माननेवाला है और विश्व का

पड़ेगा। हृत् चक्र में इष्टदेव के गुणमय रूप का ध्यान करना पड़ता है।

कुण्डलिनी के जाग्रत होने से साधक सूज जाता है। उसके विचित्र दाह उत्पन्न होता है। मूर्छा में पड़े रहना अच्छा लगता है। पीठ में, सुषुम्ना में, विचित्र गुदगुदी होती है। थोड़े थोड़े समय के बाद चींटियाँ चलती हैं, ऐसा भान होता है। यदि ऐसी हालत में साधक थोड़े दिन पड़ा रहे तो उसको प्राण जाने का भय रहता है। उसकी अवधि साधारणतया ४१ दिन की और उससे बढ़कर छः महीने तक की होती है। इससे ज्यादा वह जी नहीं सकता। उसको यही भान होता है कि अन्दर कोई तन्तु टूट गया अथवा कुछ उखड़ गया है। एक व्यक्ति इक्कीस दिन में ही मर गया था। यदि किसी साधक को ऐसी स्थिति का अनुभव हो तो उसे तीन तीन घण्टे पर शहद, दूध और सिता तीन तीन तोला मिलाकर देना चाहिये। निर्गुण्डी वृक्ष की तीन चार पत्तियों का चूर्ण गाय या बकरी के चार माशे घी के साथ दिन रात में तीन बार देना चाहिये। ऊपर के इन दोनों उपचारों में एक घण्टे का अन्तर रहना चाहिये। अगर निर्गुण्डी न मिले तो हिरण या छाग का एक तोला कच्चा मांस देकर ऊपर से दो बार ब्राण्डी देनी चाहिये। त्रि मधु को निर्गुण्डी या मांस और ब्राण्डी के साथ तीन-तीन घण्टे पर पाँच-पाँच बादाम दिन में तीन बार देना चाहिये। अन्न और नमक वर्जित हैं। इस प्रकार तीन दिन तक प्रयोग करने से साधक की मूर्छा दूर हो जाती है। फिर साधक को धीरे धीरे रेचक, कुम्भक करके भस्त्रीका करनी चाहिये। इससे चित्शक्ति फिर से कुण्डलिनी के ऊपर स्थित हो जायगी। साधारण हालत में वह कुण्डलिनी के ऊपर ही स्थित होती है। परन्तु कुण्डलिनी के चलने में वह च्युत हो जाती है। ऊपर कहे हुए उपाय से वह फिर अपने स्थान पर आ जाती है और तभी साधक जी सकता है। केवल आसन से कुण्डलिनी का उत्थान नहीं होता।

वैराग्य योग

इन्द्रीना अर्थ भोगे, ना चित्त वीतरागी,
अभिमान त्याग जो तूं, तो थाय वीतरागी। १३६

जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों के भोग के लिये काम करता है और जिसका चित्त भोगों से हट नहीं गया है, उसको वैराग्य जाग्रत नहीं हो सकता। यदि तुझे अपने मन में वैराग्य को जगाना है तो अभिमान को त्याग दे।

जन्मी मरे बुढापो, ने रोग दुःख मोह,
छे दोषथी जणाया, कामादि सुख क्रोह। १३७

जन्म-मरण, बुढ़ापा, रोग, दुख, मोह, काम, क्रोध, सुख—ये सब मन के दोष से उत्पन्न होते हैं।

आ पुत्र दार म्हारां, आ गेह देह मारूं,
हा, शोकमां डुबावे, थाये न अन्त तारूं। १३८

लोग कहते हैं कि सन्तान, स्त्री, धन, दौलत सब मेरे हैं परन्तु ये सब अन्त में उनके नहीं होते। ये उन्हें केवल मोह और शोक में डुबानेवाले होते हैं और अन्त में इन्हें छोड़ने में दुख होता है।

ज्ञाता छे जीव तारो, ने ज्ञान सत्य विद्या,
आज्ञेय विश्व वर छे, द्वारा जणाय विद्या। १३९

तुम्हारा जो जीव है, वह ज्ञाता है। सत्य विद्या ज्ञान है और विश्व ज्ञेय है, जसके द्वा रा विद्या जानी जाती है।

दृष्टा अनेऽनुमन्ता, भर्ता प्रभू तमे छो,
परमातम रूप तारूं, सारे भर्या तमे छो। १४०

हे प्रभु, तू द्रष्टा है, तू विश्व को माननेवाला है और विश्व का

पालन करनेवाला है। तुम्हारा परमात्मा रूप है और तू सारे विश्व का सार है।

जग ओत पोत व्यापी, करने अनन्त माथा,
छे विश्व रूप तारूं, वरणे न विश्व गाथा। १४१

हे प्रभु, तू जगत् में ओत-प्रोत है (सर्वव्यापी है)। तेरे अनन्त हाथ और सिर हैं। यह सब विश्व तेरा ही स्वरूप है। इस विश्व-गाथा का वर्णन कोई नहीं कर सकता।

अविकारी रूप तारूं, निर्गुण प्रकार तेना,
वसतो स्वभाव तारे, भोगे गुणोज तेना। १४२

हे प्रभु, यद्यपि यह जगत् विकारों से भरा हुआ है पर तो भी तू अविकार-रूप है। तेरे स्वरूप का प्रकार निर्गुण है अर्थात् सत्, रज, तम से परे है। तू अपने स्वभाव में ही वास करता है, (और विश्व इसमें से होकर भी) और इन सब गुणों का ही भोग करता है।

रज कर्म ने जणे छे, सत्त सुख आपनारू,
तम मोहने जगाड़ी, नांखे अकल अन्धारू। १४३

रजोगुण कर्म को उत्पन्न करता है, सत्वगुण सुख को देनेवाला है और तमोगुण मोह उत्पन्न करके बुद्धि भ्रष्ट करता है अर्थात् मन सच्ची बात सोच नहीं सकता।

आ दृश्य रूप तारूं तूं कारणनो प्रकाश,
जो निर्गुणी अखाड़े तारोज तूं प्रकाश। १४४

इस विश्व में जो कुछ दृश्य दिखाई देता है यदि उसका मूल देखने जायें, तो जो कुछ भी दिखाई देगा, वह तेरा ही स्वरूप है। तू विश्व के प्रकाश का भी प्रकाश है। इस निर्गुणी अखाड़े में तू ही तेरा प्रकाश है।

जोती फरू फनामां, गोती जना जनामां,
शूं ते मना हशे के, "मोती" फना न मामां। १४५

मैंने तुझे शून्य में ढूँढ़ा, प्रत्येक व्यक्ति में ढूँढ़ा परन्तु तू कहीं नहीं दिखाई पड़ा, तो क्या तेरा मिलना मेरे लिये मना है, या मोती (प्रभु) शून्य और सृष्टि में नहीं है।

हा, पामती न कांइ ज्यां जाऊं त्यांज खोती,
भटकी न प्राण खोऊं जो हाथ होय "मोती"। १४६

हाय! मैं बहुत बहुत ढूँढ़ती फिरी, किसी जगह कुछ न मिला। जहाँ गई, वहाँ मैंने कुछ खोया ही। यदि मोती मेरे पास होता तो मुझे विश्वास है कि मुझे इस प्रकार भटक-भटक कर प्राण न खोने पड़ते।

बाहर वळी हु गोती, अन्तर नजर न जोती,
दशदिक करे टटोती, क्यां झळझळाय "मोती"। १४७

मोती (आत्मा) का प्रकाश कहाँ झलझलाता है, यह देखने के लिए मैं अन्दर-बाहर और दशों दिशाओं में ढूँढ़ती फिरती रही।

पेठी जई जिगरमां, श्री विश्व भारतीना,
धोती सळे जणायुं, "मोती" समी सतीना। १४८

परन्तु जब विश्व-भारती के जिगर के अन्दर जाकर शोध किया तब विद्या के आवरण के नीचे विवेक-बुद्धि दिखाई पड़ी।

अन्तराग्निहोत्र

अन्नादि भोजनो जे, जगमां मनुष्य खाये,
ते पित्तथी जिराये, रस रूप फेरवाये। १४९

अन्न आदि भोजन जो मनुष्य इस जगत् में खाता है, वह पित्त से पचता है और फिर उसका रस बन जाता है।

रस देह चक्र नाड़ी, घूमे परीण मनथी,
फरि फेर सप्त धातू, जागे जरी जमणथी। १५०

वह भोजन पचकर उसमें से बना हुआ रस देह की नाड़ियों के चक्र में घूमता है। इसी घुमाव के कारण देह में सप्त धातुयें बनती (रस, मांस, मेद, मज्जा, रक्त, शुक्र और अस्थि ये सात धातुयें हैं)।

ते सूक्ष्म थाय ज्यारे, मननो श्रहार तारे,
पण अन्न ऊर्मियोना, तेथी थशे किनारे। १५१

जब ये सब धातुयें बनकर इनमें सूक्ष्मत्व उत्पन्न होता है तब वो मन का आहार बन जाता है लेकिन उससे मन की ऊर्मियाँ अलग नहीं होती हैं।

अभ्यास योग द्वारा, मन रोकवा करे जो,
ना अन्न खाय सारू, मन पर असर करे जो। १५२

जो साधक योग के अभ्यास-द्वारा मन के रोकने का प्रयत्न करता है, वह यदि शुद्ध अन्न नहीं खायेगा तो उसके मन पर असर जरूर पड़ेगा।

तेथी विचार वगडी, ने हीन कर्म थाय,
चित्त चालतू रुकेना, ना योग सिद्ध थाय। १५३

उस तामसी अन्न से विचार बिगड़ेंगे और कर्म भी हीन होंगे। चित्त की चंचलता नहीं रुकती और उससे योग भी सिद्ध नहीं होता। अर्थात् युक्त आहार-विहार से ही योग सिद्ध होता है।

कुत्सित विचारवाळा, साथे रही न खावूं,
भिक्षा न मांगवी त्यां, तेनूं न अन्न खावूं। १५४

नीच विचारवाले मनुष्यों के पास बैठकर खाना नहीं चाहिए। यदि तुम संन्यासी हो तो ऐसे मनुष्य के यहाँ भिक्षा भी नहीं माँगनी चाहिए और उसका अन्न भी नहीं खाना चाहिए।

रस स्वाद गुण त्रणना, तेनो विचार करवो,
जे अन्न हाथ आवे त्यां ब्रह्म भाव धरवो। १५५

स्वादिष्ट राजसी, सात्विक या तामसी जैसा भोजन सामने आये, उसे रस और स्वाद के कारण वैसे ही नहीं खाने लगना चाहिए, बल्कि जब अन्न खाने को मिले तब प्रभु का ध्यान करके भोजन करे। इससे अन्न बाधक नहीं होता।

जमनार ब्रह्म ध्यावो, ते अन्न ब्रह्म रूप,
ते ब्रह्म थी जणायूं, छे ब्रह्म तत्स्वरूप। १५६

जो खानेवाला है, वह ब्रह्म का ध्यान करे। अन्न में भी ब्रह्म को देखे क्योंकि वह अन्न ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है और ब्रह्म ही उसका रूप है।

जे आयु, वर्धनी छे, उत्साह बल वधारे,
आरोग्य प्रेम सुखने, पोषी अनन्द धारे। १५७

इस प्रकार ध्यान करके यदि व्यक्ति भोजन करता है, तो भोजन की कुत्सित वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और इससे आयु, उत्साह तथा बल की वृद्धि होती है और आरोग्य, प्रेम तथा सुख को देकर आनन्द बढ़ाता है।

रसयुक स्निग्ध भोजन, छे सात्विकी सुणो जन,
खाता विकार नाना, ना थाय शुद्ध भोजन। १५८

रसयुक्त और चिकना भोजन सात्विकी भोजन है। उसके खाने से नाना प्रकार के विकार पैदा नहीं होते और वह शुद्ध भोजन कहलाता है।

कट्वम्ल उष्ण खारा, अतिरूक्ष तीव्र तीखां,
आहार राजसी जे, जणता कुरोग फीकां। १५९

कड़वा, खट्टा, गर्म, खारा, अति रूखा और बहुत मिर्चवाला—ये सब राजसी आहार हैं, इन्हें खाने से कुरोग पैदा होते हैं।

ते शोकमां उतारे, दिल दाहने वधारे,
दुःखना उभार जारी, करवा न नेह धारे। १६०

ये राजसी भोजन खाने से मन में रूखापन यानी शोक हो जाता है, मन जलने लगता है (शारीरिक और मानसिक दाह बढ़ती है), दुःख का उभार जारी रहता है, बुरे विचार आते हैं और निष्काम प्रेम नहीं हो सकता।

बगडेल अर्ध पाक्यां, रसहीन गन्ध खोटी,
वासी जमेल एठां, अडकेल बुद्धि खोटी। १६१

जो फल बिगड़ा या सड़ा हुआ हो, आधा पका, रसहीन, दुर्गन्धिवाला हो और जो अन्न बासी हो, खाया हुआ हो, जूठा हो, त्यागा हुआ हो और जिसे बुरे विचारवाले व्यक्ति ने छुआ हो—

ते **अन्न तामसी** छे, जे खाय बुद्धि खारी,
चोरी तथा छिनाळी, पर पीडवा जुगारी। १६२

वह तामसी भोजन है। उसके खाने से बुद्धि खराब हो जाती है। ऐसे अन्न खाने से चोरी, पर स्त्री-गमन, दूसरों को दुख देने की और जुआ आदि खेलने की इच्छा पैदा होती है।

तेथी बचीने चालो, खाओ न सर्व संगे,
ते जो न थाय तो आ, ऊपाय पाळ संगे। १६३

इसलिए दुनियाँ में बहुत सँभलकर रहना चाहिए, सबके साथ नहीं खाना चाहिए। अगर ऐसा न हो सके तो नीचे लिखा उपाय पालन करो—

निज मन्त्र भावनामां, होमो जमो प्रसंगे,
ना दोष अन्न लागे, ज्यां जाओ खाओ रंगे। १६४

ऐसे अवसर पर अन्न को अपने मन्त्र की भावना में होम करके खाओ तो अन्न का दोष भस्म हो जायेगा और खानेवाले को दोष नहीं लगेगा। इस रीति से तुम कहीं भी जाकर खा सकते हो।

अनुकुल काल पामो, कर प्राण यज्ञ सामो,
नीचे लखेल मन्त्रो, आपे सदा विसामो। १६५

यदि समय अनुकूल हो तो नीचे लिखे मन्त्रों से प्राणयज्ञ करना, इससे भोजन की खराबियाँ नष्ट होकर आराम मिलेगा।

जे अन्न सामने छे, पहेलो गरास लावी,
कर ध्यान ब्रह्म वेदी, आत्मा अनल जगावी। १६६

जो अन्न सामने आये, उसके पहले ग्रास को उठाकर ब्रह्मरूप वेदी का ध्यान करके, आत्मा की अग्नि जलाकर—

जठराग्नि होम **'प्राणाय स्वाहा'** मन्त्र बोली,
तो प्राण थाय तृप्त, ने थाय तृप्त चक्षु। १६७

'प्राणाय स्वाहा' मन्त्र से जठराग्नि में हवन करना। उससे प्राण तृप्त होते हैं, प्राण की इन्द्री चक्षु (नेत्र) तृप्त होते हैं।

जो नेत्र तृप्त थाय, आदित्य तृप्त खोली,
आदित्य द्यौ खिलावे, तो त्यां रह्युं जे सव। १६८

नेत्र के तृप्त होने पर उसका दैवत्व सूर्य भी तृप्त होगा, सूर्य के तृप्त होने से आकाशमण्डल भी तृप्त होगा।

ते तृप्त थाय तेथी, ऊठे पशु प्रजा जे,
ते जो प्रसन्न वोपे, श्री ब्रह्म सर्वमां जे। १६९

आकाशमण्डल के तृप्त होने से वहाँ रहनेवाली प्रजा और पशु प्रसन्न होंगे और उसमें रहनेवाला ब्रह्म प्रसन्न होकर सन्तुष्ट हो जायगा।

बीजो गरास 'व्यानाय स्वाहा' मन्त्र होमे,
तो व्यान तृप्त थातां, जग श्रोत्र तृप्त होमे। १७०

दूसरे ग्रास को 'व्यानाय स्वाहा' मन्त्र कहकर हवन करना, उससे व्यान तृप्त होगा, विश्व के कान तृप्त होंगे।

ते चन्द्र तोषकारी, दिक् सोमथी ठरे छे,
दिक् सोम तृप्त थाये, तो सर्व त्यां रह्युं जे। १७१

उससे चन्द्रमा सन्तुष्ट होगा और चन्द्रमा की दिशायें भी तृप्त होंगी। दिशाओं के तृप्त होने पर वहाँ जो कुछ भी है, वह सब तृप्त हो जायेगा।

ते तृप्त थाय तेथी, त्रूठे पशू प्रजा जे,
ते जो प्रसन्न तोषे, श्री ब्रह्म सर्वमां जे। १७२

उस सबके तृप्त होने से वहाँ की प्रजा तथा पशु प्रसन्न होंगे और वहाँ रहनेवाला ब्रह्म भी प्रसन्न होगा।

त्रीजो हुं ने 'अपानाय स्वाहा' मन्त्र लग्नी,
त्यां तृप्त थाय वाणी, तेथी प्रसन्न अग्नी। १७३

तीसरा ग्रास लेकर 'अपानाय स्वाहा' मन्त्र से हवन करना, उससे वाणी प्रसन्न होगी। वाणी के प्रसन्न होने पर उसकी दैवत अग्नि प्रसन्न होगी।

तो तोष पामती भू; पृथ्वि अनल धरया जे,
त्रूठे प्रजा पशू ने, श्री ब्रह्म सर्वमां जे। १७४

उससे इस पृथ्वी का गोला तृप्त होगा और उसमें रहनेवाली अग्नि

तृप्त होगी। उनमें रहनेवाली प्रजा, पशु और उनमें रहनेवाले ब्रह्म भी सन्तुष्ट होगे।

चोथु हवन 'समानाय स्वाहा' मन्त्र तोपे,
मन मेघ विधु त्यां जे, पशुने प्रजा प्रभू जे। १७५

चौथा ग्रास 'समानाय स्वाहा' कहकर हवन करने से मनरूपी बादलं की बिजली तथा उसमें रहनेवाली प्रजा, पशु और ब्रह्म सन्तुष्ट हो जायेंगे।

त्यां पांचमी 'उदानाय स्वाहा' तोपती जे,
त्वक, वायु, व्योम त्यानी, पशुने प्रजा प्रभू जे। १७६

पाँचवें ग्रास को 'उदानाय' मन्त्र कहकर हवन करो। इससे त्वचा, वायु, आकाश, वहाँ की प्रजा, पशु और ब्रह्मा सबको सन्तोष होगा।

जे यज्ञ आ करे छे, ते विश्वने जमाडे,
अन्तर्तणा विभूने, संतोष मां रमाडे। १७७

ऊपर लिखी विधि से जो यज्ञ करता है, वह सारे विश्व को भोजन कराता है, उसके अन्तर में रहनेवाले विभु को भी सन्तोष मिलता है।

विज्ञान योग

नीचे तीन प्रकार के यज्ञ बताये गये हैं—

आशा तजी फलोनी, कर्तव्य ध्यान धारी,
स्थिर प्रज्ञ यज्ञ कर्ता, नी सात्विकी किनारी। १७८

श्रेयत्व, मान, धन और पुण्य इत्यादि फलों की आशा न रखते हुये केवल कर्त्तव्य को ध्यान में रखकर स्थिर और दृढ़ बुद्धि से किया हुआ यज्ञ सात्विकी यज्ञ कहलाता है।

आशा धरी फलोनी दम्भार्थ वा करे जो,
ते यज्ञ **राजसी** छे, निज नाममां वरे जो। १७६

जो फलों की आशा रखकर, दम्भ के साथ अपना नाम बढाने के लिये यज्ञ किया जाता है, वह राजसी यज्ञ कहलाता है।

विधिहीन दान मन्त्रो, ने दक्षिणा विनाना,
श्रद्धा विना करेला, ते **तामसी** दिवाना। १८०

जो यज्ञ विधिरहित, दानरहित, मन्त्ररहित, श्रद्धारहित और दक्षिणा दिये विना किया जाता है, वह तामसी यज्ञ कहलाता है।

नीचे तीन प्रकार की तपस्यायें बताई हैं—

विद्वान देव द्विज श्री, गुरू पाद पद्म पूजा,
ने शौच ब्रह्मचारी, थई ईष्ट पाद पूजा। १८१

विद्वान्, देवता और ब्राह्मण का सन्मान करना और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये अपने गुरु की सेवा करना सबसे बडी इष्ट पाद-पूजा है।

सन्नम्रता, अहिंसा, तप देहना गणाय,
कायिक करे तपस्या, यमथी न ते हणाय। १८२

नम्रता का व्यवहार करना, किसी को कष्ट न पहुँचाना—ये सब देह की तपस्यायें कहलाती हैं। जो लोग यह तपस्या करते हैं, वे यम (स्वर्ग-नर्क के देनेवाले) से यानी द्वित्व के बन्धन से छूट जाते हैं।

मननी प्रसन्नता ने, सौम्यत्व आत्म निग्रह,
संशुद्धि भावनानी, शूं मौन धैर्य विग्रह। १८३

मन की प्रसन्नता, सौम्यता (शान्ति), आत्म-निग्रह (मन को

उच्च गुणों में स्थित करने का प्रयत्न करना), भावना की संशुद्धि, मौन रहना, धैर्य रखना—

> आ मानसी प्रवृत्ती, तप साधना करे तो,
> **मनसा करे तपस्या,** ना मृत्युथी डरे तो। १८४

ये सब मन की प्रवृत्तियाँ कहलाती हैं। जो इस प्रकार तप की साधना करता है, उसे मृत्यु का डर नहीं रहता।

> ना वाक्य बोल एवा, जेथी दुभाय कोनूं,
> मन, बोल सत्य प्रिय हीत, चित जे लुभाय कोनूं। १८५

ऐसे शब्द मत बोलो, जिनसे किसी के चित्त में दुःख हो। सत्य भी ऐसा बोलना चाहिये, जो सुननेवाले का मन प्रसन्न करे।

> स्वाध्यायनूं मनन कर, ते **वाचिकी तपस्या,**
> त्रण आ प्रकार तपना, कर चित्तथी तपस्या। १८६

यह सद तथा अपने हितकर बातों का चिन्तन करना और ईश्वर का स्मरण यह वाचिकी तपस्या है। ऐसे उपर्युक्त रीति से कायिक, मानसिक और वाचिक तपस्या करने से मनुष्य की उन्नति सरलता से होती है।

अब सात्विक, राजसी और तामसी तपस्या किसे कहते हैं, यह नीचे बताया गया है—

> श्रद्धा फलो तजीने, स्थिर चित्तथी करे जो,
> ते **सात्विकी तपस्या,** नर धन्य ते करे जो। १८७

फलों की आशा त्याग कर श्रद्धा से और स्थिरचित्त रहकर जो तपस्या की जाती है, वह सात्विकी तपस्या कहलाती है। ऐसी तपस्या करनेवाले मनुष्य धन्य हैं।

सत्कार, मान, पूजाना, अर्थ दम्भथी जे,
जन आदरे तपस्या, जो राजसी थती ते। १८८

सत्कार, मान, पूजा की इच्छा रखकर और पाखण्ड के साथ जो तपस्या की जाती है, वह राजसी तपस्या कहलाती है।

हठ, कष्ट, देह आपी, पर नाश कारणे जो,
लोको करे तपस्या, ते तामसी गणे जो। १८६

दूसरों का नाश करने के लिये हठ करके शरीर को कष्ट देते हुए जो तपस्या की जाती है, वह तामसी तपस्या कहलाती है।

दान तीन प्रकार के कहे गये हैं—

उपयुक्त स्थान समुचित, समये जो दान आपो,
दातव्य भावनाथी, सत्पात्र मान आपो। १६०

उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त समय पर दातव्यभाव से सत्पात्र को सन्मान देते हुये—

बदला तणी दुराशा, मनमां न स्थान पामे,
ते दान सात्विकी छे, मनमां न मान पामे। १६१

और बदले की दुराशा रक्खे बिना और अभिमान किये बिना जो दान किया जाता है, वह सात्विकी कहलाता है।

उपकार ने ठेकाणे, उपकार भाव राखी,
फल आश दुःखथी वा, दे दान भेद राखी। १६२

उपकार के बदले में उपकार करने की इच्छा से; पुण्य या उन्नति के फल की आशा से या दुखी होकर मन में भेद रखकर इच्छा न हो तो भी दान देना—

ते दान राजसी छे, दिलदार दिल न देखे,
आ काम आवशे तो, आपो कही परेखे। १६३

यह राजसी दान है। ऐसे दान के समय दान लेनेवाले सच्चे दिल के आदमी को देनेवाले का दिल नहीं दीखता है क्योंकि वह दान बदले की आशा से दिया गया है कि किसी दिन यह काम आयेगा।

ना स्थान युक्त पेखे, ना कालपात्र देखे,
अपमान ने अवज्ञा, करतो स्वमान देखे। १६४

जो दान युक्त स्थान देखे बिना और समय तथा पात्र देखे बिना, अभिमान में भरकर, अपमान और अवज्ञा के साथ, अपने सन्मान के लिये दिया जाता है—

ते दान तामसी छे, क्यां भावना मळे त्यां,
दामू न दान आपे, क्यां कामना फळे त्यां। १६५

वह तामसी दान कहलाता है। ऐसे दान देने में भावना तो होती ही नहीं। पास में धन होते हुए भी जो धन दान न दे, उसकी कामना किस प्रकार पूरी हो सकती है!

श्रद्धा विना करे जे, क्यां पामशे फलो तो,
फल आश त्यागनी क्यां, वातो करो फळो तो। १६६

श्रद्धा रक्खे बिना दान करने से फल नहीं मिलता और जहाँ श्रद्धा नहीं होगी वहाँ फलत्याग की आशा रखने की बात करनी ही व्यर्थ है।

ज्ञान के प्रकार सुनिये—

प्रत्येक भूतमां जे, अणु मात्र सूतमां जे,
व्याप्यो अखंड रूपे, अवकाश पूर्णमां जे। १६७

प्रभु प्रत्येक व्यक्ति में, हर नर में और अणु में अखण्ड रूप से, और आकाश में पूर्ण रूप से व्याप्त है।

जे सर्वमां रहेलो, छे सर्व रूप पोते,
छे रूप क्यां अरूपी, जे भाव सूप पोते। १९८

वह सर्वव्यापी है, वह सर्वरूपी है, उस अरूपी का कोई रूप नहीं है। वह सब भावनाओं का सार है।

अणुमां अकाशमां जे, छे सूक्ष्म ने महत्तम,
अविभक्त अव्ययी जे, विण अन्त छे बृहत्तम। १९९

वह एक अणु में भी उतना ही भरा हुआ है, जितना आकाश में। वह सूक्ष्म में भी पूर्ण है और बड़ी से बड़ी वस्तु में भी पूर्ण है। उसके हिस्से नहीं हो सकते, उसका व्यय नहीं हो सकता, उसका अन्त नहीं हो सकता—वह अनन्त है और बड़े से बड़ा है।

जो ओळखे विभूने, आ ज्ञान सात्विकी छे,
जरनो झरो तपासी, ले मूल तात्विकी छे। २००

ऐसे व्यापक प्रभु का विचार करके उसे पहचानने का जो प्रयत्न किया जाता है, वह सात्विकी ज्ञान कहलाता है। झरने में से जो उत्तमोत्तम दौलत झड़ रही है, उसके तत्वमय मूल को पकड़ने के लिए चित्त को लगाकर प्रभु को पहचानना सात्विकी ज्ञान है।

जे ज्ञान भिन्न भावे, अस्तित्वने जतावे,
नानात्व भावनामां, जे भूतने बतावे। २०१

जिस ज्ञान से व्यक्ति भिन्न भिन्न भावों में अर्थात् अपने से अलग प्रभु के स्वरूप को देखता है और जो नाना प्रकार की भावनाओं में ईश्वर के अस्तित्व को देखता है—

ते ज्ञान राजसी छे, जो अन्तरे तपासी,
फरती क्रिया बतावे, मन रंग भार भासी। २०२

वह ज्ञान राजसी है। यदि तू अन्तर में घुसकर अर्थात् विचार करके उसका अध्ययन करेगा तो तुम्हारा अन्तर (मन) स्वयं ही निर्णय कर लेगा।

छे एक देह वासी, परमातमा समस्त,
छे एक देश वासी, ते एक कार्य मस्त। २०३

ईश्वर एक देह में रहनेवाला है, एक ही स्थान पर रहता है और एक ही काम में मस्त होकर काम करता है—

तत्वार्थमां न बुद्धी, मन गर्त भेक जेवूं,
ते ज्ञान तामसी छे, ते जो ठरे न तेवूं। २०४

ऐसा विचार करनेवाले की बुद्धि तत्वार्थ में नहीं होती। उसका मन कुएँ के मेंढक के समान संकुचित होता है और वह व्यक्ति स्थिर चित्त वाला नहीं होता। ऐसे ज्ञान को तामसी ज्ञान कहते हैं।

नीचे कर्म के प्रकार बताये गये हैं—

जे कर्म नित्य थाय, नियमे रही सदाय,
आसक्ति राग द्वेषो, ने कामना तजाय। २०५

जो कर्म नित्य नियमानुसार किये जाते हैं, और जो आसक्ति तथा रागद्वेष और कामनारहित होते हैं;

ना कर्म फाल जोवा, जेनूं हियूं तणाय,
ते कर्म सात्विकी ने, ते दिव्य जो गणाय। २०६

सम्पूर्ण कर्मों से मन को हटाकर, कर्म के फल में मन न लगाकर

जो कार्य किया जाता है—वह सात्विकी कर्म है। ऐसा कर्म दिव्य गिना जाता है।

कामेप्सु भावना मां, अभिमानथी प्रयत्ने,
जे कर्म राजसी ते, जोवाय छे प्रयत्ने। २०७

जो काम फल की इच्छा (कामना) की भावना से अभिमान के साथ किये जाते हैं, वे राजसी हैं।

जे काल देश शक्ती, व्यय, आय, मित्र सीमा,
परिणाम शोचता ना, ते मूढ तामसी मां। २०८

जो कर्म देश, काल, आय, व्यय, सहायक, शक्ति और परिणाम सोचे बिना किये जाते हैं, वे तामसी कर्म हैं।

आसक्ति हीन नाहं, वादी धरी धीरज जे,
उत्साहथी करे जे, मन शोचतो न रज जे। २०९

जिसको विषयों में किसी प्रकार का आकर्षण नहीं है, जो 'मेरा अस्तित्व प्रभु के चरणों में अर्पित है, मैं प्रभु से पृथक् नहीं हूँ'—ऐसा मानता है और जो धीरज धरकर उत्साह के साथ काम करता है।

सिद्धी मळे असिद्धी, बेनी धरे स्पृहा ना,
ते सात्विकी गणाय, कर्ता करे स्पृहा ना। २१०

और जिसमें सफलता या असफलता के लिये जरा भी स्पृहा (इच्छा) नहीं है, वह कर्त्ता सात्विकी कहलाता है।

रागी फलो न छोडे, लोभी ममत्व मोही,
छे शोक हर्ष कर्ता, ते राजसी कुद्रोही। २११

जो दुनियाँ के विषयों में लगा है, सब फलों को भोगना चाहता है,

लोभ, मोह और ममत्व से भरा हुआ है और जो बात-बात में शोक, हर्ष तथा द्रोह किया करता है, वह कर्त्ता राजसी कहलाता है।

राखे न लक्ष कर्मे, शठ आलसी अकर्मा,
दुःखमां रहे विषादी, संतोष क्यां कुकर्मा। २१२

जिसका लक्ष्य कर्त्तव्य की तरफ नहीं रहता, जो दुष्ट और आलसी है, जिसकी इच्छा काम करने की नहीं होती और जरा से दुख में जो रोने लगता है—ऐसे कुकर्मी को सन्तोष कैसे मिल सकता है?

छे दीर्घ सूत्र तेनो, निज मन्त्रने अतोषी,
कर्ता ते **तामसी** छे, विष बीज छेक दोषी। २१३

जो धीरे-धीरे काम करनेवाला अर्थात् सुस्त है, जिसे अपने मन्त्र में असन्तोष है, वह अन्त तक अपने में दोषयुक्त विष के बीज बोया करता है। ऐसा करनेवाला तामसी है (आलस्य और अकर्म—ये तामसी कर्त्ता की जड़ हैं)।

बुद्धि के प्रकार ये हैं—

जेनी प्रवृत्ति धर्मे, छे पापथी निवृत्ती,
क्यां काम केम करवू, तेमां सजग प्रवृत्ति। २१४

जिसकी प्रवृत्ति केवल धर्म (सत्य) की तरफ है और पाप से जिसकी बुद्धि ने निवृत्ति पा ली है और किस जगह कौन सा काम करना—इस बात में जिसकी प्रवृत्ति सजग है।

शूं काम बंध थाय, छे सार मोक्ष शा मा,
जे बुद्धि जाणती आ, ते **सात्त्विकी** नशामां। २१५

अगर व्यक्ति क्रियारहित हो जाय तो मुक्ति कहाँ से मिलेगी? जो बुद्धि इस बात को जानती है, वह सात्त्विकी बुद्धि है।

जे धर्मने अधर्म, फावे न निश्चयेथी,
कर्तव्य मांही चूके, ते राजसी नशामां। २१६

'क्या करना क्या न करना' इसका निश्चय जो नहीं कर सकता और जो कर्त्तव्यपालन में चूक जाता है, वह राजसी नशे में है।

आ पाप धर्म भासे, हित देखतो अहित मां,
अज्ञान आवरणमां, ते तामसी नशामां। २१७

जो प्रत्येक स्वार्थ के काम को ही धर्म समझती है (अर्थात् स्वार्थी है); जो अहित में ही अपने हित को देखती है और जो बुद्धि अज्ञान के पर्दे में ढँकी हुई है, वह तामसी बुद्धि है।

धीरज के प्रकार ये हैं—

जे धैर्य चित्त रोके, मन वैषिकी क्रियाथी,
योगे घरी जडे जे, धी चालती क्रियाथी। २१८

जो धीरज मन को विषय की क्रियाओं से रोकने में सहायक होता है; जिससे योग के अभ्यास में मन चिपक जाता है और जिसकी सहायता से युक्त क्रिया करने में बुद्धि को प्रेरणा मिलती है—

ते धैर्य सात्विकी छे, व्यभिचार ज्यां न वामे,
निज अंग जंग जोरे, माया अनल न दामे। २१९

वह धैर्य सात्विकी है। वहाँ व्यभिचार सताता नहीं है और अपनी धारणा शक्ति की तीव्रता से मायारूपी अग्नि जिसे नहीं जलाती है।

ते धैर्य सिद्धि आपे, धर्मार्थ कामनानी,
ते राजसी फलोमां, ज्यां धून कामनानी। २२०

जो धीरज धर्म, अर्थ और कामना की सिद्धि देनेवाला है और

जिससे कामना की ही धुन लगी रहती है, वह धीरज राजसी कहाता है।

जेथी न ऊंघ जाय, भय शोकने विवाद,
जो नित्य ते नवा छे, ईर्षा अने विषाद। २२१

जिस धैर्य से नींद बहुत आती है; रोज नये-नये भय, शोक, विवाद, ईर्ष्या और विषाद पैदा होते हैं—

ते धैर्य तामसी छे, जेमां कुबुद्धि ताणे,
ते धैर्य ना गणाय, आलस्य शुद्धि ताणे। २२२

वह तामसी धैर्य है। वह मनुष्य को कुबुद्धि और आलस्य की ओर खींच ले जाता है इसलिये उस धैर्य की धैर्य में गणना नहीं की जा सकती।

आ जो गुणो गणाय, ते सर्व बुद्धि बांधे,
जो तो स्वभाव तारे, क्यां तार सार सांधे। २२३

ऊपर कहे हुये गुणों में प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि बँधी रहती है। प्रत्येक गुण को अपने स्वभाव के अनुसार व्यक्ति अनुभव करता है क हमारी बुद्धि उसके तार में बँधी हुई है; अब उसमें से छूटे कैसे।

रण रम्य रंग नाचे, रसमां स्वभाव तेना,
तं जो विचार जंगे, तो नाच रंग तेना। २२४

इस[1] वधरूपी युद्ध के रम्य नाच में प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुसार रस में फँसकर नाचता है। इसलिये तू विचाररूपी युद्ध में विजयी होकर सत्य विचार के रङ्ग में नाच।

आ आवती जती छे, माले न हाथ चूके,
थं नाचतो न चूके, तो कण्ठ हाथ मूके। २२५

यह माया आने-जानेवाली है, यह संसार को भुलावे में डालती है

और नये-नये नाटक दिखाती है। इसलिये यदि प्रभु तेरा हाथ न पकड़ेगा तो तू नाचने में चूक जायगा। यदि तू अपनी होशियारी से नाचने में चूकता नहीं है तो माया तेरे गले में हाथ डालकर तुझे फँसा लेगी।

> शूं द्रव्य गुणमां छे, जो तूं फसाय ना तो,
> तारा रचेल रंगे, तूं कां न नाच गातो। २२६

हे जीव! तू जरा असल बात तो सोच! इन तत्वों के गुणों में क्या रक्खा है! यदि तेरा मन इस नाटक के एक्टिङ्ग (अभिनय) में न फँसे और तू समझ ले कि यह रङ्ग तेरा ही बनाया है, तो तू चाहे जितना नाचे, तुझे कुछ भी दोष नहीं लगेगा।

> जो एक विश्वमां छे, 'मोती' जडेल नागी,
> तेनूज नाम **माया**, तूं नाच संग जागी। २२७

यदि तुझे जगता का अध्ययन करना है तो एक ही उपाय है। इस विश्व में एक ही चीज है, जिसे माया कहते हैं और जो नङ्गी है, उसमें मोती जड़ा हुआ है। इसे तू अच्छी तरह समझ ले और जागता हुआ नाच कर। यदि भुलावे में पड़ा तो माया तुझे खा जायेगी।

> आंखो मळे पडे तो, चांपे चढी ते छाती,
> उठायना न झाले, कर श्री गुरू दयाथी। २२८

यदि कहा उस माया के साथ नाचने में जरा सी नाद आ गई तो यह तुझे पटक कर तेरी छाती पर चढ कर तुझे दबा देगी। उस समय यदि गुरु दया करके तेरा हाथ नहीं पकड़ेगा तो तू उठ नहीं सकेगा।

हुंशीयार जो कहूं हूं, आ मार्गे चाल चेती,
'मोती' पडे न वारूं, कर राख माल चेती। २२९

इसीलिये गुरुदेव शिष्य से कहते हैं कि तू होशियार रह ! तेरे पास जो मोती है, वह गिर न जाय, इसके लिये उसको अच्छी तरह से पकड़ कर मार्ग में चैतन्य होकर चल।

जो भूलथी पडे तो, लूंटी ने मारशे ते,
खोवाय माल सारो 'मोती' सरी, जशे ते। २३०

यदि वह मोती भूल से भी गिर जायेगा तो माया तुझे लूट कर मारेगी और तेरा माल अर्थात् तेरी सब कमाई भी नष्ट हो जायेगी।

योग वर्णन

अभ्यास योगनो ते, जो हुं तुने बताऊं,
ते साधता सदा तूं, पामे मुने जताबूं। २३१

गुरुदेव शिष्य से कहते हैं कि अब मैं तुझे योग का अभ्यास बताता हूँ। उसका साधन करने से तू सदा मुझे पायेगा और मेरा ही जैसा हो जायेगा।

व्यवहार भेद साधन, योगो घणा प्रकारे,
प्राधान चार भेदो, सूण थाय जे प्रकारे। २३२

साधन के व्यवहार-भेद से योग बहुत प्रकार के होते हैं, पर उनमें मुख्य योग चार हैं। वे कैसे किए जाते हैं, मैं तुझसे कहता हूँ, सुन।

लय, मन्त्र, राज, हठजो, अभ्यासता विभेदो,
कर एक पूर्ण तपथी, जग जाय भोग भेदो। २३३

लययोग, मन्त्रयोग, राजयोग और हठयोग—ये योगाभ्यास के चार प्रधान भेद हैं। इनमें से यदि एक भी पूर्ण तपश्चर्या के साथ किया जाय तो व्यक्ति जगत् के भोगों का भेदन करके पार हो सकता है।

अब उसकी अवस्था बताता हूँ।

तेनी सूणो अवस्था, आरम्भ. घट परिचय,
निष्पन्ति सर्वमां जे, आचार भेद निश्चय। २३४

प्रथम सीढ़ी यह है कि गुरुदेव के शब्दों को अन्तर में स्थित करके उसके अनुकूल अभ्यास करना। प्रत्येक लक्ष्य का अनुभव प्राप्त करना दूसरी सीढ़ी है। प्रभु में तन्मय होना तीसरी सीढ़ी है। चौथी सीढ़ी है तत्व का ध्यान करके तत्व-दैवत्व को सन्मुख कर लेना (साक्षात्कार करना)।

मन्त्र योग

जो मन्त्र मातृकाथी आ शब्द बीज जागे,
ते तत्व गूण दावे, निज सत्व अंग जागे। २३५

मन्त्र के साथ मातृका का जप करने से शब्दबीज का विस्फोट होता है, और उनके तत्व का ध्यान करके तू तत्व-दैवत को सन्मुख कर सकता है।

ने ध्येय देवताना, मनमां गुणो जगाडे,
मन ते जपी गुणोनी, छबी रूप सद्यपाडे। २३६

जिस देवता का तुम ध्यान करोगे, उसी देवता के गुण तुम्हारे मन में उत्पन्न होंगे। इस प्रकार सब गुण तुम्हारे मन में उतरते-उतरते एक दिन तुममें आ जायेंगे और तुम भी ईश्वर हो जाओगे। इसलिए तुम मन में उन गुणों को उत्पन्न करो!

अणिमादि सिद्धि क्रम जो, भोगे न ज्ञान पामे,
जेथी ठरी सुठोरे, ले स्वाद मस्त जामे। २३७

जिन्हें अणिमा आदि अष्ट-सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं, वे यदि उनको भोगेंगे तो गिर जायगे, यदि न भोगेंगे तो उन्हें ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। ज्ञान उत्पन्न होने पर अच्छे स्थान में बैठकर वे उसका मस्त होकर स्वाद लेंगे।

आ मन्त्रयोगने जे, सत्साधको वधारे,
ते मुक्त मुक्ति पामे, गुरूनी कृपा करारे। २३८

जो सत्साधक इस मन्त्रयोग को उचित रीति से करता है और इन सिद्धियों में फँसता नहीं है, वह इस विश्व में गुरु की कृपा (किनारे को पाकर) में अवश्य ही मुक्त हो जाता है।

कानिष्ठ साधकोने, आ योग सिद्धि आपे,
चित्त अन्य जो रमे ना, कर मन्त्र सिद्धि जापे। २३९

जिस साधक में किसी भी दूसरे योग के करने की सामर्थ्य नहीं है, उसे यह मन्त्रयोग सिद्ध करने में अधिक श्रम न होगा, यदि उसका मन दूसरी जगह न जाये तो।

लययोग

लय योग चित्त जेथी, लय कोटि कर्म पामे,
ते निष्कली प्रभूनूं, ज्यां ध्यान चित्त पामे। २४०

लययोग के करने से मन में रहे हुए अनेक कर्मबीजों का नाश होता है, और न जान सके ऐसे प्रभु का ध्यान मन में स्थिर होता है।

खाये पिये रमे ने, घाले सुषुप्ति सपने,
जे एक ब्रह्म ध्याये, बीजा तणु न सपने। २४१

लययोग के करने से जिसका चित्त एकाग्र हो जाता है, उसे खाने-पीने और खेलने में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती। स्वप्न में भी उसे सुषुप्ति अवस्था का भान रहता है। एकमात्र ब्रह्म का ही ध्यान रहता है, और किसी वस्तु का उसे स्वप्न में भी ध्यान नहीं होता।

छे ध्यान जीवने जे, ते तेजमां समाय,
लय योग विश्व विभूमां, अन्तर जई समाय। २४२

जो जीव मन में जिस चीज का ध्यान करता है, वह उसी का स्वरूप बन जाता है। इसी तरह लययोग का अभ्यास करनेवाला विश्वविभु के अन्तर में समा जाता है।

हठयोग

हठयोग जे सुणो ते षट भाव भावना मां,
षट अङ्ग ते तणा जो, अभ्यास जीव सामा। २४३

हठयोग के क्या अर्थ हैं, वह सुनो। हठयोग के छः अङ्ग हैं। जिस जीव को उसका अभ्यास करना हो, उसे इन छः अङ्गों को अपने सन्मुख रखना चाहिये।

आसन ने प्राण संयम, आहार प्रत्ययी मां,
ते ध्यान धारणा ने, प्रत्यक समाधि सीमा। २४४

वे छः अङ्ग निम्नलिखित हैं—

१ दृढ आसन, २ प्राणायाम, ३ युक्तभोजन, ४ ध्यान, ५ धारणा, और ६ सविकल्प समाधि।

यम ने नियम मळी, बे, अष्टाङ्ग योग जोगे,
मननी निवृत्ति थाशे, जो जाग योग जोगे। २४५

ऊपर कहे हुए छः अङ्गों के साथ यम और नियम मिलकर योग के कुल आठ अङ्ग हैं। इन आठों अङ्गों को सामने रखकर मन की निवृत्ति हो जाती है।

मुद्रात्रयी त्रिबन्धन, ने देहनी क्रिया त्रण,
आ त्रणना त्रिभेदो, योगे कहूँ करी गण। २४६

हठयोग करने में तीन मुद्राएँ, तीन बन्धनो और देह की तीन क्रियाओं—इन तीनों के तीन भेद करने पड़ते हैं, यह सुनो।

मुद्रामहा, महाबन्ध ने खेचरी महावेध,
जालंधरो ड्डियाणी, ने मूलबंध मा वेद। २४७

महाबन्ध, महावेध, खेचरी ये तीन मुद्राएँ हैं और जालंधर बन्ध, उड्डियान बन्ध तथा मूल बन्ध—ये तीनों बन्ध हैं।

सन्धान दीर्घ प्रणवी, सिद्धान्तनू श्रवण जे,
आ सर्व योग विद्या, सरसारना लवण जे। २४८

प्राण को मन के साथ जोड़ना, ॐकार (प्रणव मन्त्र) को दीर्घ करके (फैलाकर) उच्चारण करना और तत्वविज्ञान को सुनना—ये सब योग की विद्या कहलाती हैं। यह सर्व-साधन रूपी सरोवर के सार का नमक है।

दाबा चरण नी एडी, योनि परे अडावे,
जमणो चरण पसारी, कर जोरथी चढावे। २४९

अब पहले महाबन्ध के अर्थ क्या हैं, वह सुनो—बायें पैर की एड़ी को योनि और गुदा के बीच के जोड़ पर लगाकर दाहिना पैर लिंग के ऊपर के भाग पर चढ़ाना और दोनों हाथों की हथेलियों को दोनों घुटनों के ऊपर के भाग पर उल्टी दिशा में जोर से दबाना। इससे शरीर का हिलना-डुलना बिलकुल बन्द हो जाता है।

दाढी हृदय लगाडी, पूरक पराण कुम्भक,
धीमे धरी सुधारी, दृढ धार छोड़ रेचक। २५०

ठोटी को हृदय (छाती) पर लगाना। शुरू में आठ मात्रा गनकर श्वास का अन्दर लेना। ३२ मात्रा तक श्वास को अन्दर रोकना और फिर १६ मात्रा गिनते-गिनते श्वास को बाहर निकालना। इस क्रिया का क्रमानुसार पूरक, कुंभक और रेचक कहते हैं। इसको प्राणायाम कहते हैं।

दाबे करी फरीने कर दक्ष पाद रोकी,
जे पाग छे पसार्यो, ते मांड मांडि रोकी। २५१

बायाँ पैर लम्बा करके दोनों हाथों से पैर के अँगूठे को पकड़ना और सिर को घुटने के पास अड़ाना।

महाबन्ध नाम आ छे, सद्‌योग आपनारू,
जे को करे जगत मां, ते मुक्ति पामनारू। २५२

इसको महाबन्ध कहते हैं। इससे योग साधा जाता है। इसको जो कोई भी करेगा, वह मुक्ति पा जायेगा।

आ बन्धने जमावी, पूरक अनन्य धीजे,
करतो स्वकर्ण मुद्रा, गति प्राण आवरी जे। २५३

महावेध के क्या अर्थ हैं; सुनो! कान में मुद्रा लगाकर पूरक करना—

पुट वे समा क्रम्याथी, वायु स्फुरे वधे छे,
महावेध नाम जेथी, दृढ धारणा बधे छे। २५४

और दोनों पैर सीधे फैलाकर पैरों को जोड़कर वायु को बहुत समय तक रोके रहना। इस क्रिया को महावेध कहते हैं। इसके करने से धारणा-शक्ति बढ़ती है।

जिह्वा वधारी फाली, ने कण्ठ मां मुके जो,
गल छिद्र नासिकाना, पर्दा बंधी रुके जो। २५५

अब खेचरी मुद्रा के अर्थ सुनिये! पहले जीभ के नीचे के जोड़ को बाँस की धार से धीरे-धीरे काटना। फिर जिह्वा का दोहन करके उसे लम्बी करना। तब नाक और गले का पर्दा बन्द हो जाये, ऐसी रीति से गले में जीभ को रखना।

मुद्रा ते खेचरी छे, भ्रूमध्य दृष्टि राखे,
योगी करे जरा ने, यम बीक ते न राखे। २५६

इसको खेचरी मुद्रा कहते हैं। इसे करके भृकुटि के बीच में ध्यान करने से बुढ़ापे और यम (मृत्यु) का डर नहीं रहता है।

निज कण्ठ ने सिकोडी, हृदये लगाडतो जे,
जालन्धराख्य ते छे, दृढता वधारतो जे। २५७

अपने गले के बाहर निकले हुए भाग को सिकोड़ कर, गले को हृदय पर लगाना। इस क्रिया को जालन्धर बन्ध कहते हैं। इसे करने से दृढ़ता बढ़ती है।

एडी थकी दबावी, सङ्कोच योनि केरू,
जेथी अपान ऊठे, ते बन्ध योनि केरू। २५८

एड़ी को लिंग के ऊपर के भाग पर दबाकर योनि को संकुचित करने से अपान वायु ऊपर चढ़ती है। इसे योनि-बन्ध कहते हैं।

जे प्राण ने सुषुम्ना, प्रेरे दबाव नाखी,
ऊडे गति प्रवेगे, उड्डियान बन्ध राखी। २५९

फिर उसके ऊपर दबाव डालने से उड्ड्यान बन्ध होता है और उससे प्राण तथा सुषुम्ना नाड़ी में वेग से गति के उठने की प्रेरणा होती है।

भेगा अपान प्राणो, ने नाद विन्दु भेगा,
छे मूलबन्ध जेथी, वे जीव ब्रह्म भेगा। २६०

ऊपर से प्राण और नीचे से अपान के दबाव के बीच में नाद-विन्दु का विस्फोट होने से जीव आवरण रहित होकर मूलतत्त्व चित्त के सन्मुख आ जायेगा। प्राण और अपान की इस क्रिया को मूलबन्ध कहते हैं।

नीचे कपाल उपर, पग आसमान जोवा,
विपरीत नाम मुद्रा, कर्ता न मृत्यु जोवा। २६१

नीचे सिर और ऊपर पैर कर जो शीर्षासन होता है, उसे विपरीत मुद्रा कहते हैं। उसको करनेवाला मृत्यु से परे हो जाता है।

आहार सूक्ष्म लघु जे, ते यम अने अहिंसा,
नियमो कहुँ बतावूं, जो त्याग कर्म हिंसा। २६२

अभ्यास करने के लिये नीचे लिखे दस यमों में से 'सूक्ष्म और लघु आहार' खाने का यम और दस नियमों में से 'अहिंसा' का पालन करना विशेष रूप से आवश्यक है नहीं तो अभ्यास ठीक नहीं होगा।

आसन प्रधान चारे, जो नाम सांभळीने,
ते पद्म, सिद्ध, भद्रो, ने सिंह ले कळीने। २६३

अब चार प्रकार के प्रधान आसन कहते हैं। उनके नाम ध्यान में रक्खो—१ पद्मासन, २ सिद्धासन, ३ भद्रासन और ४ सिंह आसन।

जे योग साधको ने, छे विघ्न रूप दोष,
ते सांभळो कहूँ हूँ, त्यागे स्वचित्त कोष। २६४

अब हठयोग के साधक का विघ्न करनेवाले दोष क्या हैं, उन्हें सुनो और उन दोषों को चित्त में से निकाल दो।

आलस्य धूर्त वातो, तन्त्रादि साधनो जे,
भूतादि प्रेत विद्या, स्त्री लौल्य बन्धनो जे। २६५

आलस्य, धूर्त्तता, तन्त्रादि-साधन (मारण, मोहन इ०), भूत-प्रेत-विद्या, स्त्री में आसक्ति—ये सब दोष बन्धन में डालते हैं। इनका त्याग कर दो।

सुन्दर जमीन गोतो, जेमा न द्वार मोटा,
मत्कुण मशक सतावे, ना कीट जन्तु खोटा। २६६

योग करने के लिये पहले सुन्दर स्थान ढूँढो। उसमें बहुत बड़े खिड़की दरवाजे नहीं होने चाहिये अपितु उसे गुफा की तरह होना चाहिये। उस स्थान में शरीर को सतानेवाले मच्छर, मक्खी आदि जीव-जन्तु नहीं होने चाहिये।

धूपादि गुग्गुलोथी, कर स्थान ने सुवासित,
उचुं नहीं न नीचुं, ते स्थान स्वच्छ वासित। २६७

ऐसे स्थान को पहले गूगल आदि धूप से सुवासित करे। फिर समतल भूमि के ऊपर—

त्यां पाथरी निजासन, कुश चर्म, चैल आवृत,
बेसो जई धरीने, पद्मासने दृढ व्रत। २६८

कुशासन बिछाकर उस पर मृगचर्म रखे। उसके ऊपर रेशमी आसन बिछाकर पद्मासन लगाकर दृढ व्रत से बैठे।

अङ्गुष्ठ हाथ जमणे, अवरोधि पिङ्गलाने,
पूरो पवन ईडा मां, षोडश धरो कलाने। २६९

तब दाहिने हाथ से पिंगला नाडी को रोककर १६ मात्रा गिनते-गिनते इडा-द्वारा श्वास अन्दर ले जाय।

कुम्भक करो गणीने, मात्राङ्क साठ चार,
रेचक बत्तीस जारी, कर पिङ्गला विचार। २७०

६४ मात्रा तक प्राण को अन्दर रोके रहे और ३२ मात्रा पूरी करते-करते प्राण को बाहर निकाल दे।

शिर हाथ फेरवी ने, जे छोटिका वगाडो,
मात्रा गणाय एक, तेवी दरेक पाडो। २७१

सिर के चारों तरफ घुमाकर चुटकी बजाना—इसे एक मात्रा कहते हैं। इस प्रकार १६, ६४ और ३२ मात्रा का एक प्राणायाम करने में पोने-चार मिनट लगते हैं। यह आरम्भ मे नहीं सधता है। इसलिये इसके आधे समय का प्राणायाम कर सकते हैं।

प्रातः बपोर सायं, ने मध्य रात्रि वेळा,
क्रमथी वधार एंशी, तक जोर चार वेळा। २७२

इस प्रकार प्रात, दोपहर, साय और अर्ध रात्रि के समय धीरे-धीरे बढाकर प्रत्येक समय ८० प्राणायाम करना चाहिए।

अभ्यास मास त्रणनाथी, शुद्ध थाय नाडी,
आ चिह्न बाह्य भासे, जो शुद्ध थाय नाडी। २७३

इस प्रकार तीन मास के अभ्यास से शरीर की सब नाडियाँ शुद्ध हो जाती हैं, जिसके चिह्न निम्नलिखित हैं—

लघुता शरीर दीपे, जठराग्नि देह कृशता,
मुख तेजमां प्रकाशे, बल बुद्धि भास समता। २७४

शरीर में हलकापन आता है, शरीर की दीप्ति बढती है, जठराग्नि

मन्द हो जाती है, देह दुर्बल हो जाती है, मुख पर तेज आ जाता है, बल और बुद्धि बढ़ती है और सब समत्व दीखने लगता है।

खारू ने उष्ण खाटु तीखुं सरूक्ष शाक,
सेवो अनल न पत्नी, ना पथ चाल थाक। २७५

प्राणायाम के अभ्यासी को नमकीन, गर्म-खट्टा, तेज मिर्च और रूखा शाक नहीं खाना चाहिये। उसे आग के पास नहीं बैठना चाहिये और स्त्री का सङ्ग नहीं करना चाहिये। उसे इतना नहीं चलना चाहिये कि देह थक जाये।

न्हावुं न प्रातः माने, उपवास काय क्लेश,
आ सब साधनाथी, योगी रहे हमेश। २७६

बहुत सवेरे उठकर उसे स्नान नहीं करना चाहिये, जो नहीं रखना चाहिये, जिससे शरीर को कष्ट पहुँचे। हठयोग के अभ्यासी को इन सब नियमों का पालन करना आवश्यक है।

गो धूम मुद्ग शाली, घी दूध पथ्य खीर,
जे खाय चालशे ते, आ तेज धार तीर। २७७

गेहूं, मूँग, घी, दूध, खीर—यही उसे खाना चाहिये। ऐसी खुराक खानेवाला ही तलवार की धार जैसे तेज (कठिन) मार्ग पर चल सकता है।

अणिमादि सिद्धि सामो, खेंचे रमत बतावी,
आसन उठे चढ़े छे, गति आसमान फावी। २७८

अणिमादि अष्टसिद्धियाँ उसे प्राप्त होती हैं और साधक को अपनी ओर खींचती हैं। साधक अपने आसन से ऊँचा उठ जाता है।

सामर्थ्य सिद्धि जगने, जो ते बतावशे तो,
चढतां पड़े स्वसिद्धि, खाशे पटावशे तो। २७९

इस समय जो साधक अपनी सामर्थ्य दिखाता है या सिद्धि का उपयोग करता है, वह गिर जाता है और उसकी सिद्धियाँ उसी को खा जाती हैं।

> आ योग विघ्न छे जो, सामर्थ्य ते बतावे,
> गूंगा बधिर समो था, तो विश्व ना सतावे। २८०

सिद्धि की सामर्थ्य दिखाना योग में विघ्न-रूप है। उससे व्यक्ति बच नहीं सकता, इसीलिये गूँगे, बहरे जैसा बनकर रहने की जरूरत है। इससे विश्व उसे नहीं सतायेगा।

> जो लोकने तमासो, तूँ दाखवी ठगे तो,
> ना योग थाय पूरो, माया नडे ठगे तो। २८१

यदि तू दुनिया को अपना तमाशा दिखाकर ठगने का प्रयत्न करेगा तो योग पूरा नहीं होगा और माया उसमें बाधा डालकर तुझे ठगेगी।

> वायु गये सुषुम्ना, पञ्चादि तत्त्व चेती,
> पादादि जानु क्रमनी, कर भूतशुद्धि चेती। २८२

जब अभ्यास करते-करते सुषुम्ना नाड़ी चलने लगे तब तत्त्व में तत्त्व का लय करने के लिये पादादि जानु के क्रम से भूतशुद्धि* करनी चाहिये।

---

* भूतशुद्धि—चित्त के एकाग्र होने के बाद उसको तत्त्व-विकार से रहित करना अर्थात् 'तत्त्वं तत्त्वे नियोजयेत्' के लक्ष्य से मन को आकर्षण करनेवाले तत्त्वों का उत्तरोत्तर लय करना अर्थात् प्रथम भूतत्त्व के जलतत्त्व में लय होने का ध्यान करना। फिर जलतत्त्व के अग्नितत्त्व में, अग्नि के वायु में और वायु के आकाश (शून्य) में लय होने हुये भाव का ध्यान करना। फिर इस शून्य स्थान में आत्मा का ध्यान करके

ते पांच धारणामां, तत्वो वितत्व थातां,
ते ध्यान पन्थ सीडी, सर कर समाधि जातां। २८३

ऐसी पञ्चेन्द्रियों की धारणा म सर्व तत्त्वों को लय करने के लिए उस ध्यान रूपी सीढी के मार्ग को समाधिस्थ स्थिति में प्रविष्ट होने के पहले पार कर।

थाये प्रस्वेद तेथी, मर्दन करो स्वगर्दन,
तो तेज वृद्धि थाये, छे स्वेद सार मर्दन। २८४

प्राणायाम करने से जो पसीना आता है, उसे गर्दन पर मलकर सुखा देना। इससे शरीर का तेज बढ़ता है क्योंकि वह पसीना कोई चर्बी या विकार नहीं है, अपितु अन्तर में से निकला हुआ सत्त है।

वायु यथेष्ठ धारी, जो शक्ति थाय सारी,
केवल ते कुम्भकी छे, ना रेच पूर जारी। २८५

कुछ अधिक शक्ति प्राप्त होने के बाद पूरक तथा रेचक करने की आवश्यकता नहा रहती। जब चाहे तब प्राण रोक सकते हैं। इस स्थिति को 'केवल कुम्भक' कहते हैं।

फैलाना, इस क्रिया का नाम समाधि है। समाधि का लक्ष्य प्राप्त होने के बाद अर्थात् हृदयाकाश के आत्मामय हो जाने के बाद आत्मा का विस्मरण नहा होता अर्थात् मन आत्मामय बन जाता है।

बहुत जाग्रत् अवस्था में भी अर्थात् विश्व के बाह्य स्थूल कार्य करने पर भी वह स्मरण और आत्मानन्द नहा मिटता। अस्तित्व की इस प्रकार की स्थिति को ईश्वरत्व कहते हैं।

उसी पद को पहुँचे हुये महाव्यक्तिया (जैसे भगवान् कृष्ण) का जन्म इस भू में किसी समय अपने बहुत कार्य के लिये होता है। उसको विश्व अवतार रूप से मानता है।

केवल मां दिल अलोटे, चित्त वृत्तिनी निवृत्ति,
ते धारणा धरीने ध्याने रमे प्रवृत्ति। २८६

ऐसी रीति से 'केवल कुम्भक' होने पर मन उसमें रम जाता है। चित्तवृत्ति की निवृत्ति होती है। उस निवृत्ति को पाए हुए मन को ध्यान में लगाने से उसकी प्रवृत्ति ध्यान में ही लगी रहेगी।

लय थाय आत्म ज्योति, आनन्द नी समाधी,
जो योग भोग वाले, जागी जमे समाधी। २८७

तव मन आत्मज्योति में लय होता है और ईश्वर के बराबर आनन्द की समाधि प्राप्त करता है। उस योग में सब भोग जल जाते हैं।

त्यां ब्रह्म जीवना जे, भेदो बधा मटे तो,
जो एक तत्व जागी, आनन्द तत्व जोतो। २८८

वहाँ जीव और ब्रह्म के सब भेद मिट जाते हैं और एकमात्र आनन्द ही बाकी रह जाता है।

वज्रोली आमरोली, सहजोली नी क्रिया जे,
तेनोज मर्म भाखूं, सुण शब्द मां क्रिया जे। २८९

इसी प्रकार के योग के लिए तीन प्रकार की दूसरी क्रियाएँ भी हैं। उनके नाम वज्रोली, आमरोली और सहजोली हैं। अब इनका रहस्य कहता हूँ, सुन।

अमरीकपाय पीतां, नित साध आ क्रियाने,
वज्रोली नाम तेनुं, अच्युत थइ जमाने। २९०

वज्रोली* क्रिया करने के समय गुरुचि, आँवला और गोखरू का काढ़ा पीना या अकेले आँवले का काढ़ा पीना। इस क्रिया के करने से साधक अच्युततत्त्व को प्राप्त करता है।

रजरङ्ग विश्व भोगे, पण भोग ना सतावे,
मन जो न क्यां फसे तो, चित्त मस्त योग दावे। २६१

इस क्रिया से साधक को विश्व में भोग भोगते हुए भी भोग सताता नहीं है और यदि मन किसी जगह फँस न जाये तो मन योग में ही मस्त रहता है।

त्रण लोक वेद त्रण छे, त्रण सन्धिने स्वरो त्रण,
त्रण अग्नि आ गुणो त्रण, जो विश्व नी क्रिया त्रण। २६२

तीन लोक हैं---भू, भुवः और स्वः अर्थात् भूलोक, भुवलोक और स्वर्गलोक। तीन वेद हैं—ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद। तीन संधियाँ हैं—प्रातः, मध्याह्न और सायं। तीन स्वर हैं—इडा, पिंगला और सुषुम्ना। तीन अग्नि हैं---आहवनीय, गार्हपत्य और वृकाग्नि। तीनों

* वज्रोली—यह क्रिया हठयोग की एक उपक्रिया है, जिसका उपयोग योगी लोग ब्रह्मचर्य के भाव को सँभालने के लिए करते हैं। कुम्भकादि योग के मुख्याभ्यास से इसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह क्रिया, साधक के अघटित मार्ग में चले जाने की सम्भावना होने से और कई साधकों के इसी साधना से उलटे मार्ग में चले जाने से, यहाँ विस्तारपूर्वक नहीं लिखी गई। इसका अभ्यास कठिन और (गलत होने से) रोगकर है इसलिए गुरु के सन्मुखतत्त्व बिना इसे करना ठीक नहीं है। आत्मसाधनार्थ यह क्रिया इतनी उपयुक्त भी नहीं है।

गुण हैं—रज, सत और तम तथा इस विश्व की तीन क्रियायें हैं—उत्पत्ति, स्थिति और लय।

त्रण अक्षरी गुणोने, मन **राजयोग** राखी,
ध्याने अडिग दिल थी, ते सत्व दाख चाखी। २९३

ॐकार मन्त्र अ, उ और म इन तीन अक्षरों का बना हुआ है। उसमें रज सत तम ये तीनों गुण हैं और उत्पत्ति स्थिति-लय ये तीनों क्रियायें हैं। इस प्रकार के उस मन्त्र का, अपना मन राजयोग में रखते हुए, निश्चयात्मक मन से ध्यान करनेवाला सद्गुण-रूपी अंगूर को चखता है।

हृत पद्म छे अधोमुख, ने उर्ध्व नाल वाळु,
नीचे प्रकाश बिन्दु, मन त्यां फरेब वाळु। २९४

हृदय-कमल का मुँह नीचे है और नाल ऊपर। इसलिए उसका सारा प्रकाश नीचे पड़ता है। उसके काश-बिन्दु में जाल से भरा हुआ मन रहता है।

मात्रार्ध बिन्दु सामा, लय थाय नाद रूपे,
एकत्व भासता त्यां, मोती मराल रूपे। २९५

अर्ध मात्रा नाद बनकर प्रकाश बिन्दु में लय होती है और उस स्थान पर एकत्व का भान होता है। वहीं अपना अस्तित्व तेजरूप में दिखाई पड़ता है।

राजयोग

बीजाक्षरो परे छे, बिन्दु परे अनन्त,
ते नाद सूक्ष्ममां जे, गुण व्योम वास सन्त। २९६

जितने मन्त्रबीज हैं, उनके परे बिन्दु है, बिन्दु के परे अनन्त है।

सूक्ष्म नाद अवकाश का गुण है और उसमें सन्त लोग निवास करते हैं।

ज्यां शब्द ना श्रवणनी, सर्वे क्रिया समापे,
त्यां अन्त एकता मां, अन्तर्क्रिया समापे। २६७

उस स्थान पर शब्द-श्रवण और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की सम्पूर्ण क्रियायें समाप्त हो जाती हैं याने सूक्ष्म हो जाती हैं। जैसे, कान सुन नहीं सकते और अन्तर की एकाग्रता में आन्तरिक क्रिया समाप्त हो जाती है।

छे गन्ध पुष्प मां घी, दुधे ने विर्य रक्ते,
तिल मध्य तैल जेवुं, छे स्वर्ण लोष्ट रक्ते। २६८

जैसे पुष्प में गन्ध है, दूध में घी है, रक्त में वीर्य है, तिल में तैल है और लाल पत्थर में सोना है वैसे ही—

आ विश्व ओत प्रोती, अव्यक्त व्यक्त चेते,
जो गन्ध पुष्प मां थी, पवने पडी वधे ते। २६९

इस विश्व में याने व्यक्त जगत् में अव्यक्त ओत-प्रोत है। जैसे पुष्प की सुगन्धि पवन के कारण बढती है, वैसे ही योग का अभ्यास करने से व्यक्त में अव्यक्त का दर्शन होता है।

आवाज जे अनाहत, भेदी परे रमे जे,
ते योगमां चणायो, छटकी परे रमे जे। ३००

योगी अनाहद शब्द को भेद कर उससे परे निकल जाता है। जैसे दीवाल में ईंट जड़ी जाती है, वैसे ही योगी योग में जड जाता है और जगत् के व्यक्तत्व में से छटक कर उसके परे हो जाता है।

ॐ एक ब्रह्म शब्दे, एकाग्र चित्त धारी,
ध्यावे जपे मुमुक्षु, पामे दिले करारी। ३०१

ॐ एक मंत्र शब्द है। उसका एकाग्र चित्त से जप और ध्यान करनेवाले मुमुक्षु के हृदय में शांति मिलती है।

थाये अकार लय जो, प्रथमांश ते, प्रणवनो,
ऋग्वेद भू अनल त्यां, देखाय भाव नवनो। ३०२

ॐकार में रहा हुआ 'अ' कार जिस स्थान में लय* होता है, वह प्रणव का प्रथम अंश है। उसका ऋग्वेद है, भू लोक है, अग्नितत्व है और वहाँ नवशक्तियां या नव शब्दों का भाव दिखाई देता है।

अधिदेव तत्पितामह, रंगे देखाय पीळुं,
रज गुण रमे गुदाना, चक्रे देखाय पीळुं। ३०३

उसका देवता पितामह ब्रह्मा है, रंग पीला है, रज गुण है और वह गुदा-चक्र के भाव में रमता है।

बीजो उकार थाये, लय अंश ते प्रणवनो,
यजु अन्तरीक्ष वायु, भुव लोक भाव नवनो। ३०४

ॐकार का दूसरा अक्षर, जो, उकार है, वह प्रणव को लय में ले जानेवाला दूसरा अंश है। उसका यजुर्वेद है, आकाशवायु तत्त्व है, भुवः लोक है और वहाँ भी नव का भाव दिखाई देता है।

अधिदेव विष्णु रंगे, छे सात्विकी सफेद,
त्यां योनि लिङ्ग चक्रो, जलतत्त्व भाव भेद। ३०५

* जब मन प्रणव के जप में लय होकर तल्लीन हो जाता है तब प्रथम अकार का लय होता है। जप करते समय प्रणव-नाद मूलाधार से उठता है। अभ्यास से 'ॐ' में से 'अ' निकल कर ॐ के बदले केवल 'उम्' शब्द रह जाता है, फिर 'उ' निकल कर अकेला 'म्' रह जाता है।

उसका देवता विष्णु है, श्वेत रंग है, योनि लिंग चक्र उसका स्थान है और जलतत्त्व है।

मात्रार्द्ध जे मकार, लय विन्दु नाद रूपे,
छे अंश नाम शीजो, ॐ कार मन्त्र रूपे। ३०६

अर्धमात्रा याने अर्धमकार याने बिन्दु ॐकार का तीसरा अंश है। मन विश्व को पैदा करता है। उस मन का क्रिया-भाव रूपी बिन्दु नादरूप से लय होता है।

आदित्य साम थोने, स्वर्लोक सत्य लोक,
अधिदेव रुद्र रंगे, तम कृष्ण वीत शोक। ३०७

उसका अधिदेव है, सामवेद है, स्वर्ग लोक है सत्य स्थान है, अधिदेव रुद्र है, काला रङ्ग है, तम गुण है और शोक को दूर करनेवाला है।

सद्ब्रह्म भावनामां, मणिपूर तत्व पावक,
जो मन्त्र सिद्ध थाये, भव थाय शुद्ध भावक। ३०८

ऐसे अक्षरी ॐकार मन्त्र का जप करते हुए मणिपुर चक्र में सद्ब्रह्म का ध्यान करने से मन्त्र की सिद्धि और भावना शुद्ध होती है।

ॐ कार शब्द ब्रह्म, जो थाय वैखरी जग,
वाणी अकार देवो, त्याथी वहे सरी जग। ३०९

ॐकार* शब्द ब्रह्म से वैखरी सृष्टि उत्पन्न होती है। ॐकार म

---

* ॐकार का ध्यान यह है—
गमागमस्थं गमनादिशून्यमोङ्कारमेकं रविकोटिदीप्तम्।
पश्यन्ति ये सर्वजनान्तरस्थं, हंसात्मकं ते विरजा भवन्ति॥

वर्तमान अकार का देवत ब्रह्मा है, रज गुण है और उसमें से जगत् बनता है।

ब्रह्मानो भाव पूरक, विष्णु विचार कुम्भक,
श्री रुद्र प्राण संयम, ना देव भाव रेचक। ३१०

गुदाचक्र में ब्रह्मा का ध्यान करना पूरक, लिंगचक्र में विष्णु का ध्यान करना कुंभक और नाभिचक्र में रुद्र का ध्यान करना रेचक है। इस रीति से प्राण का संयम करने का नाम राजमार्ग है।

उच्चार ते प्रणवनो, कर घण्ट नाद जेवो,
ते दीर्घ चालता मां, लय थाय नाद तेवो। ३११

प्रणव का उच्चारण घण्टा के नाद की तरह हना चाहिए। उच्चारण को लम्बा करने से वह नाद लय होता है।

अविछिन्न शब्द गाजे, आनन्द बोध मा जे,
अन्तर जगाडवा जे, भय मोह कोह भाजे। ३१२

अविच्छिन्न नाद जब मन में गूँजने लगता है तब आनन्द के विज्ञान में साधक मस्त बन जाता है। वह वैराग्य जप वहाँ तक करना, जहाँ तक एक बार भी आनन्द का बोधनह। उस आनन्द का बोध होने से भय, मोह, क्रोध आदि सब दोष दूर हो जाते हैं।

जो ह्रस्व मां कहे तो, पापो दहे वहेतो,
जो दीर्घ भाव ले तो संपत्ति मुक्ति देतो। ३१३

ॐकार मन्त्र ह्रस्व में जपने से पाप जल जाता है और दीर्घ में जपने से वह मुक्तिरूपी सम्पत्ति का देनेवाला हो जाता है।

त्यां ज्योति ध्यानमां जो, अंगुष्ठ मात्र जागी,
धर ध्यान धारणाथी, धीरे धमाल जागी। ३१४

जब दीर्घ प्रणव मन में गूँजने लगता है तब अन्तर में ध्यान करने से अणुमात्र एक ज्योति दिखाई देती है। उस ज्योति को, तू सब खटपट छोड़कर धीरे से जाग्रत् रहकर, ध्यान कर।

> ॐ कार शब्द जागे, त्यां ध्यान चित्त लागे,
> तो नाद अन्त देखे, मुक्ति मळे स्वभागे। ३१५

जब ॐकार मन्त्र जाग्रत् हो जाता है और साधक का चित्त ध्यान में लग जाकर ज्योति प्रगट होती है तब शब्द ब्रह्म का अन्त दिखाई देता है और सद्भाव से ध्यान करनेवाला मुक्ति को प्राप्त करता है।

> जे मन जणे जगतनें, छे बाप कर्मनो जे,
> लय थाय ध्यान बिन्दु, तो मुक्त थाय मोजे। ३१६

जो मन जगत् को और सम्पूर्ण कर्मों को पैदा करनेवाला है, वह यदि ध्यान करने से बिन्दु में लय हो तो मुक्ति की मौज उड़ायेगा।

> हृत्पद्म अन्तरे जो, छे पद्म पुष्प काळूं,
> ते आठ पांदडान्, केसर बत्तीस वाळूं। ३१७

द्वादश पखुड़िया वे हृत् पद्म के मध्य में आठ पखुड़िया और ३२ केसरोंवाला एक काला पद्म पुष्प दिखाई देगा।

> त्यां भानु भास भासे, मध्ये शशि प्रकाशे,
> शशि मध्य वह्नि जागे, बचमां प्रभा प्रकाशे। ३१८

जब शब्द में मन लय हो जाता है तब उस काले कमल में सूर्य का भास दिखाई देगा, उसके मध्य में चन्द्रमा का प्रकाश होगा, उसके मध्य में जाग्रत अग्नि होगी और उसके भी मध्य में ज्योति का प्रकाश होगा।

ते दीपती प्रभामां, जो भव्य दिव्य आसन,
ते पर विराजती मां ज्योतिर्मयी सुखासन । ३१९

उस प्रकाशमय प्रभा में अत्यन्त दिव्य आसन दिखाई देगा, और उस आसन के ऊपर सुखासन में बैठी हुई ज्योतिर्मयी मा का दर्शन होगा ।

अळसीना पुष्प जेवू, छे श्याम वर्ण तेनू,
कर चार तेज मुखनू शशि कोटि काम जेनू । ३२०

मा का वर्ण अलसी के पुष्प जैसा श्याम वर्ण का होगा । उनके चार हाथ होंगे और कोटि चन्द्रमा के प्रकाश-जैसा तेजस्वी उनका मुख होगा ।

कौस्तुभ मणी उरे छे, ने हार दिव्य मोती,
जो रूप सुन्दरीनू ध्याने उतार गोती । ३२१

मा के उर में कौस्तुभ मणियाँ और मोतियों का दिव्य हार होगा । उस सुन्दरी मा के स्वरूप को ढूँढ कर तू अन्तर में उतार ले ।

नादयोग

चक्रना योग मां कदी न चक्र रोकाशे,
चक्र चालया पछे गये न चक्र पोकाशे । ३२२

जैसे विश्वचक्र के योग में कालचक्र कभी बन्द नहीं होता वैसे ही कुण्डलिनी एक बार यदि जाग्रत् हुई तो फिर वह उलटी नहीं होगी, चलती ही रहेगा ।

वेज उपाय राग त्याग ने मनन ना त्यां,
वीतरागी थइ अभ्यास मां चळे जो त्यां । ३२३

कुण्डलिनी के लिए दो ही मार्ग हैं—एक वैराग्य और दूसरा अभ्यास। राग का त्याग करना याने वीतरागी बनोगे तो मन सतत अभ्यास में लगेगा।

> चित्त जो थाय एकता भरेल तो छूटे,
> न तो लटकथा करे छुटे न आयु शत खूटे। ३२४

मन एकाग्र होकर ध्याता के साथ एकता का अनुभव करेगा तो जन्म-मरण के फेर से वह छूट जायगा नहीं तो फिर सौ जन्म तक भी छूट नहीं सकेगा, बीच में ही लटका रहेगा।

> सांभळो चित्त एकतानी आ सरल रीती,
> अन्तराकाश शब्द मां परोवजे प्रीती। ३२५

अब चित्त की वश करने की सरल रीति तुझसे कहता तू उसे सुन। एकता करने के लिए तू अन्तर के अवकाश याने घटाकाश में जो नाद सुनाई देता है, उसके साथ अपना मन प्रेम से लगा।

> आसने सिद्धमां करीने योनिनी मुद्रा,
> सांभळो कान दक्षमां रहेल जे मुद्रा। ३२६

सिद्धासन से बैठकर मूलबन्ध कर उँगलियों से नाक, कान और मुख को बन्द करना। इस प्रकार बन्द किए हुए दाहने कान में शब्द सुनाई देगा।

> शब्दमां चित्त वृत्तिनो निरोध थाशे तो,
> योग सिद्धि तणो अलभ्य लाभ थाशे तो। ३२७

यदि उस सुनाई देनेवाले शब्द में चित्तवृत्ति का निरोध हो जाएगा तो साधक को योगसिद्धि का अलभ्य लाभ प्राप्त होगा।

सांभळो घर्घरी विचित्र नाद पहले तो,
सूक्ष्म ते शब्द थाय पेसता अन्तर लय तो। ३२८

सबसे प्रथम विचित्र घरघरी नाद सुनाई देगा। यह नाद सूक्ष्म होकर अन्तर में लय होगा।

शब्द ते आदिमां जणाय नाद दरियानो,
मेघ भेरी झरा झरीज नाद झरणानो। ३२९

फिर समुद्र के शब्द जैसा नाद सुनाई देगा। फिर बादल, तुबड़ी और बाद में बहते हुए झरने के झर झर शब्द जैसा नाद सुनाई पड़ेगा।

ते पछे मध्यमां घसीनो सांभळो धिनकिट्,
धा धधा, वाजती मृदङ्ग धीन धा धिनकिट्। ३३०

फिर धिनकिट् धा धधा धीनधा धिनकिट्—ऐसा मृदङ्ग बजने का नाद सुनाई देगा।

घण्ट वीणा अने वशी फरी भमरो गूंजे,
सूक्ष्ममां चित्त परोवाय नादना पूजे। ३३१

बाद में घण्टे, वाणा, वंशी और गूंजते हुए भ्रमर के जैसा नाद क्रमश सूक्ष्म में चित्त लग जाने से सुनाई देगा।

आ जुओ उन्मनी जणाय वाजती भेरी,
चित्त मन बुद्धि वृत्तिओ विधारमां भेरी। ३३२

जब तुबड़ी का शब्द सुनाई दे तब उसमें मन, बुद्धि, चित्त और वृत्तियों को एकाग्र करने से उन्मनी अवस्था प्राप्त होती है।

सर्व चिन्ता मुकी चिता अकर्म ने फोडी,
गाय अन्तर्तणा ते गीत धर्मने छोडी। ३३३

ऐसा अभ्यास करनेवाले की सब चिन्ताएँ दूर होती हैं, उसकी अकर्मण्यता भी नष्ट हो जाती है और वह धर्म-हठ को छोड़कर अन्तर के गीत में मस्त रहता है।

जागती कुण्डली तजी ने भोगना विषयो,
चित्त जो नाद मां रहे न भोगता विषयो। ३३४

साधक को जब यह स्थिति प्राप्त होती है तब उसके भोग के सब विषय छूट जाते हैं और कुण्डलिनी जाग्रत् हो जाती है। नाद में चित्त के लगने से भोगों में मन नहीं लगता।

चित्त जो शब्द मां रमीने एकता पामे,
शून्य मां ब्रह्मनां पदे जइ शफा पामे। ३३५

जब चित्त शब्दों में रमकर एकता पा लेता है तब, वह सम्पूर्ण दुःखों और रोगों से छूटकर व्यापक लक्ष्य प्राप्त कर आनन्दमय बन जाता है।

उन्मनी पामता थशेज काष्ट वत् देह,
शीत उष्ण हर्ष शोक थी परे थशे देह। ३३६

जब नादयोग के अभ्यासी की उन्मनी जाग्रत् होती है तब उसका शरीर काष्ठ की तरह हो जाता है और उसकी ऐसी स्थिति हो जाती है कि वह कुछ भी नहीं कर सकता। शीत-उष्ण, हर्ष-शोकादि से उसकी देह परे हो जाती है।

हूं लखूं तूं लखे न ते लखे आ छे शूं तो,
आवती ने जती कलम लखे न ते हूं तो। ३३७

उस आनन्द का वर्णन यदि कोई करना चाहे तो नहीं कर सकता। केवल कलम-द्वारा जो कुछ लिखा जाए वही सच है।

शू लख्यूं ने लख् हजी वनावशो गीता,
गाई ते तारजो तरो रहो अमृत पीता। ३-८

इतने पर भी क्या लिखा क्या न लिखा, उसका साधक को भी पता नहीं रहता। तो भी उसको पढोगे तो वह एक बडी गीता बन गई होगी। उसको पढकर तुम और तुम्हारे साथी पार होकर अमृतपायी बन जाएँग।

मायया चक्रना बजारमां खवाशो मां,
हाय विसिमिल्ल थता विचारमां समाशो मां। ३३६

माया के चक्र के बाजार में तुम अपने को बेच मत देना और जिन विचारों में अपना अस्तित्व गिर जाय, उनसे दूर रहना।

चित्त चिन्ता तणी चिता मुकी उकाळो ना,
नित्य ने काल शूं करे नडे उनाळो ना। ३४०

अपने मन को चिन्तारूपी चिता में रखकर मत उबालना। जो आत्मा नित्य है, उसका काल—मृत्यु कुछ नहीं कर सकता। उस पर शीत-उष्ण अर्थात् सर्दी-गर्मी का कुछ भी प्रभाव नहीं पडता।

पाळजो पन्थ जो पुराण पाधरी गोती,
चित्त क्यांथी ठरे मळे न पांशरूं 'मोती'। ३४१

शान्तिपूर्वक पुराने अनुभवानुसार ढूँढकर इस मार्ग का पालन कर। इसका पालन न करने से तुझे शान्ति नहीं मिलेगी और प्रकाश भी नहीं दिखाई देगा।

लययोग (अजपा जप प्रकार)

आधार मूल मां छे, दल चारनूं कमल जे,
भूतत्व रंग पीळो, पत्रो अचल अमल जे। ३४२

आधार चक्र गुदा के ऊपर—बैठने के स्थान पर है। यहाँ चार दलवाले कमल का ध्यान करना। उसका तत्त्व 'भू' है, रङ्ग पीला है, सब पत्र मलरहित, सुन्दर और स्थिर रहनेवाले हैं।

त्यां ध्यान मातृकाना, 'व' थी लगाय 'स' तक,
जे चार अक्षरो छे, गण नाथ देव व्यापक। ३४३

यहाँ मातृका का ध्यान होता है। उसके चार दलों में 'व' से 'स' तक चार अक्षर लिखे जाते हैं। इस चक्र के देवता श्री गणपति हैं।

ते स्थान त्याग मलनू, नाडी ईडा प्रकाशे,
जो पिङ्गला जडेली, मध्ये रही स्वकाशे। ३४४

मल-विसर्जन करने के इस स्थान के ऊपर के भाग में ईडा नाड़ी का प्रकाश है और मध्य में स्वाश सहित पिङ्गला नाड़ी है।

मल देश गामिनी जे, नाडी कहे सुषुम्ना,
ते तीर्थ पुण्यकारी, छे तीर्थ राज जन्मा। ३४५

वहाँ मलदेश गामिनी सुषुम्ना नाड़ी का स्पर्श है। ऐसे उस स्थान में तीनों नाड़ियों के रहने से यह स्थान पुण्यमय प्रयाग तीर्थ कहा जाता है।

गङ्गा इडा सुषुम्ना, भासे सरस्वतीना,
रूपे छे पिङ्गला जे, यमुना त्रितीर्थ क्षीणा। ३४६

सूक्ष्म लक्ष्य से ईडा गङ्गा नदी है, पिङ्गला यमुना और सुषुम्ना सरस्वती है। इस प्रकार मूलाधार को सूक्ष्म में त्रिवेणी, त्रितीर्थ माना जाता है।

जे स्नान पुण्य प्राणी, करतो अभेद भावे,
ते मोक्ष पामता ने, भव रोग ना सतावे। ३४७

इस तीर्थ में स्थिर होकर जो पुरुषात्मा अभेद भाव से स्नान करता है, वह मोक्ष को पाता है और दुनियाँ के रोगादि उसको नहीं सताते।

अजपा जपो इमो त्यां, चित्तवृत्ति ने संभाळी,
सोऽहं ने हंसः मन्त्रो, विश्राम पाम चाली। ३४८

यहाँ ऊपर कहे अनुसार ध्यान करते समय चित्तवृत्ति को स्थिर रखकर 'सोऽहं हंसः' मन्त्र का हृदय में जप करने से शान्ति मिलती है।

जे योनि लिङ्ग देशे, षट् पत्र पद्म ध्याने,
ते स्वाधिष्ठान नामे, जलतत्त्व श्वेत माने। ३४९

फिर मन को योनिलिङ्ग स्थान पर ले जाना। वहाँ छः दल के कमल का ध्यान करना। उस स्थान को स्वाधिष्ठान चक्र कहते हैं। इसका तत्त्व जल है और रङ्ग श्वेत है।

व आदि ल सुधीना छ अक्षरो जुओ त्यां,
अधिदेव विष्णु व्यापि, शेषे पढी सुओ त्यां। ३५०

कमल के दलों के ऊपर 'व' से 'ल' तक के छः अक्षर लिखे हैं। इसके देवता भगवान विष्णु हैं और वे शेषनाग की शय्या पर सोये हुए हैं।

जे स्वर्ग तीर्थ मारा, त्यां न्हाय योगि वृन्द,
मन ध्यान योग जोगे, योगि करे अनन्द। ३५१

इस स्वाधिष्ठान चक्र को स्वर्ग-तीर्थ माना जाता है। इस तीर्थ में योगी वृन्द याने बड़े-बड़े तपस्वी स्नान करके ध्यान करते हैं—ऐसा ध्यान जो करता है, वह योगानन्द में मस्त हो जाता है।

चित्त चेति ने जपो त्यां, अजपा हजार छ तो,
वैकुण्ठ विष्णु पामो, पाछो न जन्म छ तो। ३५२

श्री भगवान् विष्णु का वह वैकुण्ठ धाम कहा जाता है। वहाँ छः हजार जप करने से वैकुण्ठ मिलता है और काम क्रोधादि छः बन्धनों से मुक्ति मिलती है।

मणिपूर नाभिमां जे, छे देव तीर्थ दिव्य,
त्यां पञ्चकुण्ड तत्त्वो, श्री काम तीर्थ भव्य। ३५३

उस स्थान से जरा ऊपर नाभि है। उसको मणिपुर चक्र कहते हैं। यह दिव्य देवताओं का तीर्थस्थान है। वहाँ पञ्चतत्त्वों का पञ्चकुण्ड है। उसे कामतीर्थ कहते हैं।

छे तत्व अग्नि शक्ति, गति स्पन्द नो विकास,
जो रक्त लाल आभा, झळके झरे प्रकाश। ३५४

उसका अग्नि तत्त्व है, शक्ति क्रिया है और गति स्पन्द-विकास है। लाल आभा का रङ्ग है, उसमें से प्रकाश झलक रहा है।

'ड' थी ते 'फ' थीना, दस पांदडे कमळनां,
दस अक्षरो विराजे, दीपेज लाल दलनां। ३५५

वहाँ लाल रङ्ग का दस दलवाला कमल है। उसके दलों के ऊपर 'ड से फ' तक के दस अक्षर लिखे हैं।

जे विश्व शक्ति माया, अधि देवता गणाय,
अजपा हजार छना, जप जोत त्यां जणाय। ३५६

इस चक्र की अधिदेवता विश्वशक्ति श्री महामाया है। यहाँ नित्य छः हजार जप करने से ज्योति दिखती है।

हृतचक्र बार दलनूं, शोभे कमल अफल नूं,
छे नाम ते अनाहत, जो जल रची अमल नूं। ३५७

फिर हृदय के ऊपर बारह पंखुड़ियों का, न समझा जा सके, ऐसे कमल का ध्यान करना। उसका नाम अनाहत चक्र है। वह सूर्य की तरह तेजस्वी है।

आदित्य तीर्थ पावन, न्हावा न ते अपावन,
झरणो प्रकाश भावन, मन शुद्धि श्रोत श्रावन। ३५८

इस चक्र को आदित्य तीर्थ कहते हैं। इसमें स्नान करनेवाले पावन हो जाते हैं। इसमें से प्रकाशमय झरना निकलता है। उस झरने में स्नान करने से मन शुद्ध होता है।

रंगे गुलाब रातूं, गुलमस्त पान पातूं,
अक्षर गणाय क थी, ठ बार सार गातूं। ३५६

उसका रङ्ग फूलों की मस्ती को पान पिलाता लाल गुलाब जैसा है। उसके दलों के ऊपर 'क' से 'ठ' तक बारह अक्षर लिखे हैं।

त्यां तत्व बे जणाशे वायू अनल गणाशे,
अधिदेव काल स्वामी, प्राणो तणो जणाशे। ३६०

हृत् चक्र में दो तत्त्व हैं—वायु और अग्नि (नाभिचक्र से ऊपर चढ़ता हुआ अग्नितत्त्व और कण्ठ चक्र से नीचे उतरता हुआ वायुतत्त्व इस अनुक्रम से लाल और धूम्र रङ्ग मिलकर गुलाबी रङ्ग होता है)। प्राणों का स्वामी काल उसका अधिदैवत है।

जो मन्त्र 'हंस सोऽहं' अजपा जपाय अन्तर,
तो काल ना सतावे, नित छ हजार मन्तर। ३६१

उस स्थान पर प्रतिदिन 'सोऽहं हंस' का छः हजार बार जप करने से काल नहीं सताता।

सतीर्थ आठ जेमां, छे ते विशुद्ध चक्र,
त्यां सोल पांदडा नो, जो पद्म कण्ठ चक्र। ३६२

उसके ऊपर कण्ठचक्र है। उसको विशुद्ध चक्र कहते हैं। उसमें आठ तीर्थ हैं। सोलह पखुड़ियों का कमल है।

स्वर सोळ त्यां लखाया, पूरव पछे क्रमेथी,
आ ध्यान लक्ष्य जोवूं, अन्तर अडो क्रमेथी। ३६३

कमल के दलों के ऊपर 'अ, आ, इ, ई' से 'अः' तक के सोलह स्वर क्रम से लिखे हैं। इस प्रकार अन्तर में एक के बाद एक का ध्यान करते हुए जप करते जाना और आगे बढ़ते जाना।

रङ्गेल धूम तममा, अधिदेव जीव आतम,
जो न्हाय धारणाथी, छूटे करम अनातम। ३६४

इस चक्र का रङ्ग धूम्र है, अधिदेवता जीवात्मा है। इन आठ तीर्थों में स्नान करने से बुरे कर्मों का नाश होता है।

अजपा सहस्र बे जो, जप चक्र ध्यान करतो,
तो छूटे छेक भवना, फेरा भमेर फरतो। ३६५

वहाँ ध्यान करके प्रतिदिन दो हजार अजपा करने से इस विश्व के जन्म-मरण से मुक्ति मिलती है।

भ्रूमध्य चक्र बे दल, आज्ञा कमल विगतमल,
काली सरे कलाधर, रेडे अमी अमल जल। ३६६

कण्ठ के ऊपर भ्रूकुटिचक्र है, जिसे आज्ञाचक्र कहते हैं। मन को वहाँ ले जाना। वहाँ दो पखुड़ियों का सुन्दर मल-रहित कमल है। उसमें भगवान् श्रीकृष्ण या श्री भगवती काली मा का कृष्ण तालाब है। वह तीर्थ है। उस सरोवर में चन्द्रमा अमृतरूपी निर्मल जल डाल रहा है।

जे न्हाय ते मरे ना, जन्मे न चक्र आवी,
छूटे महा भयोथी, फेरे न कर्म चावी। ३६७

उस सरोवर में स्नान करनेवाला जन्म-मरण के फेरे और महा-भय से छूट जाता है। कर्म उसके मन को चामों नहा दे सकता।

रंगेल श्याम शशिना, रंगे प्रभा प्रकाशे,
जो देख शुक्ल मासे मातर अनन्त वासे। २६८

वहाँ श्याम रङ्ग के चन्द्रमा-जैसी प्रभा प्रकाशित हता है, जो देखने में ऊपर से शुक्ल है और अन्तर में श्याम है।

जमणे ह्र कार देखे, वामे क्ष कार लेखे,
वे तत्व बोधना जा, अन्दर नकार देखे। २६६

भ्रुकुटि चक्र में बाईं ओर के दल के ऊपर क्षकार और दाहिनी ओर के दल के ऊपर हकार शब्द लिखा है। व दोनों वाचार्थ विशान के तत्त्व हैं। इस चक्र म शून्य भरा हुआ है याने कुछ नत्त्व नहीं है।

अजपा सहस्र जापे विष्टाय ते न पापे,
अधिदेव श्री गुरु ज छाडे कुबन्ध श्राप। ३७०

उन दोनों अक्षरों का अनन्य-युक्त ध्यान करते हुए निरन्तर एक हजार जप करने से पाप नहीं लगता। उन चक्र के अधिदेवता श्री गुरु हैं, जो साधक के शाप इत्यादि को तोड़ देते हैं।

श्री रीत जे जपे नित, अजपा हजार वीस,
जोडो छ सा हजार त्यां थाय एकवीस। ३७१

इस रीति से प्रतिदिन छः मिलाकर इक्कीस हजार छः सौ जप करनेवाला साधक—

ते पामता निवृत्ति, चित्त वृत्तनी तिजोरी,
'मोती' अगाय देखे, ते आरपार चोरी। ३७२

जगत् की प्रवृत्ति से निवृत्त होकर चित्त का निरोध कर वर्तमान मोती (प्रकाश) को आर पार देखता है।

ध्यान योग

हृतपद्म चक्र थी जो, नाडी अनेक फूटे,
तेमज अनन्त अण्डो, ब्रह्माण्ड मां वछूटे। ३७३

जैसे हृत् पद्म यानें अनाहत चक्र में से अनेक नाड़ियों में रक्त-प्रवाह बहता है वैसे ही इस अनन्त में सूर्य में से गोले छटक कर सूर्यमण्डल यानें सूर्य के आस-पास फिरते हुए ग्रह बन जाते हैं।

हृत्पद्म पोषनारु, नाडी अनेक ने जो,
चिद् आतमा स्वभासे, भासे अनेकमां जो। ३७४

जैसे हृत् पद्म अनेक नाड़ियों को पोषण देता है वैसे ही चैतन्य आत्मा विश्व को पोषण देकर अनेक में प्रकाशित होता है।

फुफ्फुस रुधिर हृदय थी, आपे त्यां श्वास चाली,
जो आ गती प्रकृतिनी, रचति अनन्त चाली। ३७५

जैसे श्वास के चलने से फेफड़े का दबाव हृदय पर पडता है और हृदय में से रक्त प्रवाहित होता है, वैसे ही प्रकृति की गति से अनन्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं।

आ देह मां फरेली, बोतेर हजार नाडी
तेमां प्रधान दश छे, जो जोरमा जगाडी। ३७६

इस देह में सब मिलाकर छोटी-बड़ी ७२ हजार नाड़ियाँ हैं। उनमें केवल दस प्रधान हैं। उनको जोर से जगा कर देख।

जेमां पवन फरे छे, प्राणादि भिन्न रूपे,
ते पण दशा दशेमां, छे प्राण भिन्न रूपे। ३७७

इन दस नाड़ियों में दस प्रकार के प्राण भिन्न-भिन्न रूप से फिरते हैं।

सुए पिङ्गला, सुषुम्ना त्रीजी इडा गणी ते,
गांधारि, हस्ति जिह्वा, पूषा, यशस्विनी जे। ३७८

शरीर में वर्तमान दस नाड़ियों के नाम इस प्रकार हैं—१ पिङ्गला, २ सुषुम्ना, ३ ईडा, ४ गांधारी, ५ हस्ती, ६ जिह्वा, ७ पूषा, ८ यशस्विनी,

ने शङ्खिनी कहूँ जे दसमी अलम्बुसा जे,
दश नाडीयो गणी जो, जे देह अङ्ग साजे। ३७९

९ शङ्खिनी और १० अलम्बुसा—ऊपर कही हुई इन नाड़ियों में दस प्राण हैं।

छे प्राण पान व्यानो, दानो समान नाग,
ने कूर्म ने धनंजय, कृकरक समीर जाग। ३८०

उनके नाम ये हैं—१ प्राण, २ अपान, ३ व्यान, ४ उदान, ५ समान, ६ नाग, ७ कूर्म, ८ धनञ्जय, ९ कृकरक

श्री देवदत्त दशमो, छे वायुनो प्रकार,
ते जीव रूप जाणे, नाडी समस्त सार। ३८१

और १० देवदत्त। ये सब वायु के प्रकार हैं। इन सब नाड़ियों के चलने से देह में जीव रहता है।

भुज जोर आफळीने, कन्दुक चढे उछाळे,
जो प्राणापान गति मां, आ जीव फेर फाळे। ३८२

जैसे गेंद को पटकने से वह उछलता है, वैसे ही प्राण के दबाव से अपान गति में आता है और उससे जीव जी सकता है।

रंचे अपान तेने, जे प्राण वायु चाले,
ने प्राणथी तणाई, बाहर अपान चाले। ३८३

अपान म शून्य (वैक्युम) उत्पन्न होने से अपान प्राण का अन्दर खचता है और प्राण अपान को बाहर फेंकता है। इस रीति से प्राण-अपान ने चक्र चलते रहते हैं।*

खग रज्जु न्याय मा आ, फरतो न फेर छूटे,
आ ज्ञान चित्त चेते, चेती फरी न फूटे। ३८४

जैसे पत्ती ने पैर में डोरी बाँधने से वह ऊपर जाकर फिर नीचे आता है पर उसके पर से छूट नहीं सकता, वैसे ही जब ज्ञान से व्यक्ति

* कुण्डलिनी की आकृति कुण्डाला हुई है। उसके सिर पर चित् शक्ति का बिन्दु है। वह प्राणरूपी प्रवाह को ऊपर चढाकर फुप्फुस और हृदय को चलाती है। अधगामी अपान शक्ति भी उस शक्ति की क्रिया का फल है, प्राणायाम करने से फुप्फुस सिकुड़ते नह, इससे प्रवाह म चलते हुये प्राण को धक्का लगाकर वह पीछे आता है और कुण्डलिनी के ऊपर दबाव डालता है। इससे अपान की गति, जो नीचे की ओर थी, प्राण के दवाव का रोकने को ऊर्ध्व की ओर होता है। अपान के वेग म फुप्फुस की रक्षा करने में प्राण का वेग खर्च होता है। इसम अपान के वेग से कुण्डलिनी सीधी हो जाती है। जैसे जैसे प्राण का बल कम होता है, वैसे वैसे अपान के वेग से कुण्डलिनी सीधा हो कर ऊपर चढता है। चित् शक्ति जहाँ की-तहाँ रहती है। उसको गति पेट के अन्दर फैलती है। इससे साधक बीमार हो जाता है। पूर्व लिखे हुये उपाय करने से उसकी चित् शक्ति फिर कुण्डलिनी के सिर के ऊपर आकर आज्ञा चक्र म पहुँचती है। वहाँ जाने से सिद्धियाँ मिलती हैं। कुण्डलिनी राजयोग और भक्तियोग दोनों म जाग्रत होती है।

का चित्त जाग जाता है तब प्राण हाथ में आ जाता है, फटता नहीं है।

> जो चित्त एकता मां, थाशे न प्राण संयम
> तो कुण्डली क्रियानी, जागे न थाय संयम। ३८५

यदि चित्त की एकाग्रता में भी प्राण का संयम न हुआ (प्रारंभ में तो चचलता रहती है पर फिर कुंभक साधे वैसी एकाग्रता होती है) तो कुण्डलिनी जाग्रत नहीं होगी और यम भी सिद्ध न होगा।

> कन्दोर्ध्व कुण्डली जे, सूती समाधि साधी,
> तेने जगाड जागे, वे एक वेध साधी। ३८६

कन्दोर्ध्व के नीचे आधार-चक्र मे कुण्डलिनी सोई हुई है। उसको जगा दे। वह क्रौंच का वेध साधने से जागती है याने प्राण और अपान दोनों की गति रोकने से जागती है।

> तेने चढाउ ऊँचे, पीता रहे सुधाने,
> जे बिन्दु इन्दु सरथी, फरत् पिये सुधाने। ३८७

जब वह जाग्रत होती है तब उसमे षट् चक्र का वेध करा कर सहस्रार दल कमल में ले जाना, जहाँ वह इन्दु-सर से, जो अमृत बिन्दु रूप से टपकता है, उसको पीती रहे।

> कर खेचरी उलट भी, फेरी फरान जिह्वा,
> ते कंठ छिद्र रोकी कर बिन्दु पान जिह्वा। ३८८

सहस्रार में से टपकता हुआ अमृत बिन्दु वृथा न जाय, इसलिए जीभ को उलटा कर खेचरी मुद्रा से कण्ठ के छिद्र को बन्द करने से उस अमृत बिन्दु का जिह्वा द्वारा पान हो सकता है। खेचरी के साथ कुम्भक होना चाहिये, नहीं तो रक्त गिरने लगता है।

जे भावना भरे दिल आ थाय पार पोती,
चढ़ चेत नाखुदा ते, कांठे जणाय मोती। ३८९

जब यह भावना मन में भरती है याने तू ध्यानयोग में मस्त होता है तब यह नाव भवसागर के पार हो जायगी। तू सचेत होकर इस भाव से उस नाव में बैठेगा तो नाविक तुमको उस पार उतार देगा, वहाँ तेजोमय प्रकाश है।

यंकार प्राण वायु, छे रंग नील मेघ,
रंकारा पान अग्नी, आदित्य रंग रेख। ३९०

जब तू इस नाव पर बैठ जायगा तब तुझे तत्त्व बीज में लय होते दिखेंगे। प्रथम यंकार बीज में प्राण, जिसका तत्त्व वायु है और रंग नील मेघ सा है, वह लय होता दिखेगा। फिर रंकार बीज में अपान वायु, जिसका तत्त्व अग्नि है और रंग सूर्य के समान लाल सुवर्ण-युक्त है, वह लय होता दिखेगा।

लंकार व्यान पृथ्वि, बन्धूक पुष्प रूप,
वंकारो दान पाणी, ने जीव शङ्ख रूप। ३९१

लंकार बीज में व्यान वायु, जिसका तत्त्व पृथ्वी और रंग बन्धूक के पुष्प जैसा रक्त सम लाल है, वह लय होता दिखेगा।

हूं छे समान शिवनूं जे दिव्य शुक्ल रूप,
हृन्नाभि नासिकामां, ते दिव्य व्योम रूप। ३९२

हंकार बीज में समान वायु, जिसका तत्त्व शिव है और जो दिव्य शुक्ल रूप है वह लय होता दिखेगा, ऐसे हृत् नाभि नासिका में ला कर वह आकाश में शून्यवत् हो जायगा।

वकार बीज में उदान वायु, जिसका तत्त्व जल है और रंग श्वेत है, वह लय होता दिखेगा।

आ अंध कूप वममां, हा क्यां दूढाय रोती,
अन्तर्गुहा कुहुरमां, जो जगमगाय मोती। ३६३

इस तम रूपी अँधेरे कुएँ में रोते फिरने से प्रकाश का पता नहीं लगेगा। इसलिए तू अन्तर गुहा के अँधेरे में एक चित्त से जब ध्यान करेगा, तो तुझे जगमगाता हुआ तेजोमय प्रकाश दिखेगा।

अभ्यास वृत्ति रोकी, जो सर्व विश्व गोती,
' ज्यां प्रेमसार सोवी त्यां झळझळाय मोती। ३६४

तू सारा विश्व भले ही ढूँढ डाले परन्तु झलझलाता हुआ मोती अर्थात् झलझलाता हुआ प्रकाश तो तुझे तभी दिखेगा जब तू अभ्यास की प्रवृत्ति से मन को बहा सके।

विचार योग

देवो मुनी गणाता, पण चित्त क्यां विरागी,
भय लाभ, मोह किल्बिष, ने क्रोध काम जागा। ३६५

संसार में बड़े बड़े देवता और मुनि लोग हो गये हैं। उनका भी चित्त वीतरागी न हो सका। मन में भय, लोभ, मोह, काम इत्यादि के भरे होने से वैराग्य कठिनाई से दीखता है।

शीतोष्ण, क्षुत्पिपासा, संकल्प ने विकल्प,
अभिमान शीलकुलनुं, जो बन्ध चित्त स्वल्प। ३६६

ठंडा गरम, भूख-प्यास, संकल्प विकल्प और कुल शील का अभिमान—यह सब मन के छोटे छोटे बन्धन हैं।

जो ब्रह्मना स्वभावे, अन्तर्जइ चणाय,
न सुख दुःख व्यापे, अपमान ना जणाय। ३९७

यदि व्यक्ति ब्रह्म के स्वभाव के अन्तर में जाकर खड़ा रहे याने उसमें चुन जाय तो उसको सुख-दुख नहीं व्यापेगा और अपमानित होने पर भी उसके चित्त पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।

अभ्यास मां रहो तो, सद् ब्रह्म भाव जागे,
अभ्यास पंथ पाळो, जेथी न मोह जागे। ३९८

ऐसे अभ्यास में यदि व्यक्ति का चित्त स्थिर रहेगा तो उसके हृदय में चैतन्य भाव जाग उठेगा और अभ्यास का पालन करने से उसमें मोह नहा जागेगा।

यमने नियम विरागी, था देश काल जोई,
आसन ने प्राण संयम, अध्यात्म ध्यान धोई। ३९९

यम और नियम का पालन करते हुए मन में वैराग्य को देश-काल के अनुसार उत्पन्न करके आसन और प्राणायाम से अपने मन को धोकर उसे अध्यात्म ध्यान में स्थिर करना चाहिये।

अन्तर करो सफा तो, देखो दफा शफाली,
जे सत्य छे रमो त्यां, त्यागो असत्य फानी। ४००

इस रीति से तुम अपने मन को साफ करोगे, तो तुम भवरोग से मुक्त होने के नियम को देखोगे। इसलिये जो नष्ट होनेवाला है, उस सबको छोड़ कर जो सत्य वस्तु है, उसमें तू मन को लगा।

छे सर्व ब्रह्म धारी, संयम करो वधारी,
ने रोक इन्द्रियो ने, यम रूप शस्त्र मारी। ४०१

सारे जगत् में चित् शक्ति सम रूप से व्याप्त है, याने प्रभु चिद् रूप से सारे विश्व में भरा हुआ है। ऐसा समझ कर संयम करो और

वढ़ाओ, और अपनी इन्द्रियों को वश में याने संयम में रख कर उन्हें यमरूपी हथियार से मार कर आगे न बढ़ने दो।

यमना प्रकार दश छे ते सॉंभळी उतारो,
तो ना नड़े अविद्या, दिल जोत पोत तारो। ४०२

यम के दस प्रकार हैं। उन सबको चित्त में उतारने मे अविद्या बाधा रूप न होगी। इससे तुझमें तम कम हो जायगा और अँधेरे के दूर होने से जो प्रकाश दिखेगा, उसमें मन रूपी नाव को तू पार कर। यम के दस प्रकार ये हैं—

हिंसा करो न, सत्ये, निष्ठा जमाव सारी,
छेडो असत्य भोगो, नव नारि ने विसारी। ४०३

१ हिंसा न करना, २ सत्य अर्थात् अच्छी निष्ठा रखना, ३ असत्य भोग छोड़ना, ४ नव-नवीन नारी याने नव-नवीन इन्द्रियों के भोगों का विस्मरण करना,

कामादि वैरी जीवो दिल धैर्य ने क्षमा वस,
आर्जव दया मिताहारि, था कहे यमो दस। ४०४

५ कामादि शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त करना, ६ हृदय में धैर्य रखना, ७ क्षमा धारण करना, ८ नम्रता रखना, ९ दया रखना और १० अल्प भोजन करना।

नियमो कहूँ सुणो ते, दश भाग भावना माँ,
जे पाळवा पडे ना, चूके न चालता मा। ४०५

अब दस नियम कहता हूँ। उनको भाव युक्त चित्त से सुन। उनका पालन करने से व्यक्ति मार्ग में चलते हुए रास्ता भूल कर नहीं गिरता।

वशमानि जेन्द्रियो छे, संतोष चोरवूं ना,
सद् शास्त्रनू मनन कर, कर दान ईश पूजा । ४०६

१ इन्द्रियों को अपने वश में रखना, २ संतोष रखना, ३ चोरी न करना, ४ अच्छे उत्तम शास्त्रों का मनन करना या उपदेश पर विचार करना, ५ दान करना, ६ ईश पूजा करना,

सिद्धान्त नू श्रवण ने, लज्जा स्वतत्त्व मां दृढ,
जप यज्ञ आदि नियमो, दश पाल चित्तथी दृढ । ४०७

७ सिद्धान्त का श्रवण करना, ८ विषयों के भोग की लज्जा रखना और संसार के झूठे प्रपञ्च में लज्जा न रखना, ९ अपने विचारों में दृढ रहना और १० जप तथा यज्ञ करना । साधक को इन दस नियमों का चित्त से पालन करना चाहिये ।

अभ्यास थी जमीने, दृढता दिले रमीने,
चित्त रोक शक छाडा, जो पेस ना नमीने । ४०८

अभ्यासी को चाहिये कि वह चञ्चल चित्त से नहीं अपितु दृढ होकर अपना अभ्यास करे । हृदय में अच्छे ढंग से दृढता को जमावे । शोक छोड कर मन को रोके । षड्रिपुओं को अवसर न दे और अपने अस्तित्व का ध्यान करता रहे ।

अन्दर धरो नजर ने, नासाग्र शूं जुओ छो,
दृष्टा ने दृश्य दर्शन, कर एक क्या जुओ छो । ४०९

अपनी दृष्टि को नाक के अग्र भाग पर स्थिर करके त्राटक करने में कुछ नहीं रक्खा है । दृष्टि को केवल अपने अन्दर आत्मा में स्थिर करो । दृष्टा, दृश्य और दर्शन सबको अलग-अलग मान कर वृथा भटकने के बदले इन तीनों को एक कर ब्रह्म के विचार में मन को लगाओ ।

बाहर जिगर मही ने, अन्दर अरूप रूप,
जो सर्व एक चेतन, संयमनू सत्स्वरूप। ४१०

इस दृश्य जगत् और अन्तर में उस स्वरूप को देखें, जो अरूप का रूप है और अंगुष्ठ मात्र है। यदि तू सबमें एक ही चैतन्य को देखने लगेगा तो यही संयम का सत् स्वरूप है।

भक्ति योग

प्रेम की बहुत तीव्रता से जब मन किसी अस्तित्व में एकाग्र होता है, तब व्यक्ति का उसी संलग्नता में अमुक काल तक रहने की लगन लगती है, परन्तु गति के नियमानुसार उसको पीछे हटना पड़ता है। इसमें उसके मन में विक्षेप जागता है। तब वियोग का अनुभव होता है और उसे रुलाई आती है। मन फिर एकाग्र होने लगता है। एकाग्रता के होने से साधक को हँसी आती है। इस प्रकार बार-बार समर्पण होने से हृदय में शून्य-जैसा भान होता है और शून्य के कारण दबाव पड़ता है। वह दबाव जब मूर्छा की सीमा तक पहुँच जाता है तब कुण्डलिनी सहसा जाग्रत हो जाती है। उस समय की स्थिति अर्ध जाग्रत जैसी होती है। कुण्डलिनी जागृति के सब विपरीत चिह्न योगोक्त रीति के अनुसार जागते हैं, और पूर्वोक्त उपचारों से वे उपशमित होते हैं। इसके बाद उन्मनी अथवा शाम्भवी मुद्रा नाम की अवस्था जागती है। उन्मनी में अमुक प्रकार की एकाग्रता का आनन्द मिलता है। साधक यदि कारणवश उसमें से जाग्रत हो जाता है तो तुरन्त ही फिर उसी अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, और वह पुनः उस अवस्था को बहुत सरलता से प्राप्त कर लेता है। ध्येय की ओर साधक की एकाग्रता होने से और उसके निरन्तर चिंतन के कारण ध्येय सन्मुख होता है और महदात्मा जाग्रत

होकर फिर स्थानारूढ़ होता है। इस स्थिति में साधक अत्यानंद का अनुभव करता हुआ आत्मा और महदात्मा की एकाग्रता का अनुभव करता है। फिर उसको ध्याता और ध्येय का भेद नहीं रहता अथवा महादात्मा के रूप की कल्पना कर वह उसके सामीप्य का आनन्द लेता है। यह भक्तियोग और राजयोग का मार्ग है।

कुण्डलिनी राजयोग, हठयोग और भक्तियोग में ही जाग्रत हो सकती है, अन्य रीतियों से नहीं।

भक्ति योग (गीति)

प्रेम विना हरि रीझे क्यां, वीणा ने मृदंग नादे तो,
कन्यादान फल शूं पामे, जो ते मृदंग ना, दे, तो। ४११

प्रेम के बिना प्रभु कैसे प्रसन्न हो सकता है? जैसे मिट्टी की गुड़िया का दान करने से कन्यादान का फल कभी नहीं मिल सकता वैसे ही प्रेम के बिना वीणा और मृदंग बजाने से प्रभु कभी प्रसन्न न होंगे।

गजल

गमे कर योगनुं प्यारा, धरी दृष्टि भ्रूकुटि चक्रे,
गमे तो नाम रूपादि, गणी मिथ्या निहारे तुं। ४१२

प्यारे, तू भ्रूकुटि चक्र के बीच में दृष्टि करके चाहे जितना निरीक्षण करे, या योग का अभ्यास करे या यह सब जो दिखता है, उसको नाम-रूप मान कर विश्व को मिथ्या समझे—

रही व्यापी अणु प्रतिमां, महा ज्योति निरंजननी,
एवूं आ तत्वनां सत्ये रमी अन्तर विचारे तुं। ४१३

या अणु-अणु में प्रभु की महाज्योति व्याप्त है, ऐसे तत्त्व के ज्ञान का अन्तर में विचार करे, या—

प्रभु नहि मूझ थी न्यारो, सदा ते हूँ सदा हूँ ते,
धरीने धारणा एवी, शिवोऽहं शं पुकारे तुं। ४१४

प्रभु तुझसे अलग नहीं है ऐसा विचार करे, या जो वह है सो तू है, या जो तू है सो वह है याने तुम दोनों में कुछ अन्तर नहीं है, इस प्रकार की धारणा रख कर विश्व के कल्याण करनेवाले शिवोहं, श या अहं ब्रह्मास्मि शब्द भले ही बोल, या—

अरे पण ते हशे हुँ ते, थये जाणी शकुं तेने,
जमावी तत्व सद्गुण ना, गुणी थइ गुण वधारे तुं। ४१५

सद्गुण के तत्वों को अपने में जमा कर अपने में गुणों को भले ही बढ़ावे, परन्तु मुझे तभी अनुभव होगा जब मैं उनका जैसा ही बन जाऊँ।

परन्तु ज्यां सुधी प्रेमे, रंग्या रंगे न लागे तुं,
वहाणे उठती लहेरे, सनमना गुण न गाये तुं। ४१६

जब तक तेरे चित्त में प्रेम की लहरें नहीं जागतीं याने जब तक तू प्रभु के प्रेम के रंग में नहीं रंगता और जब तक तू सवेरे उठती हुई प्रेम की लहरों में एक चित्त होकर प्रभु के गुणों का गान नहीं गाता तब तक इस प्रकार सोचने विचारने से कुछ नहीं होगा।

भरेला प्रेम दरिया नू, खरूं जल जो न जाणे तुं,
थया ना प्रेमना दर्शन, वृथा शिर तो पचावे तुं। ४१७

यदि तू प्रेम के समुद्र में रहते हुये सच्चे जल को नहीं समझ सका, और तुझे प्रेम का दर्शन नहीं हुआ तो तू वृथा ही सिर फोड़ रहा है।

भक्ति रहस्य (गजल)—(प्रेम तरङ्ग)

वसेला विश्व मायाना, वनोमां ईन्द्रनु उपवन,
फली फूली रह्यु शुं, चन्दनोमां गन्धनू उपवन। ४१८

इस माया के विश्व में वर्तमान वनों में इन्द्र का एक उपवन था। यह उपवन फूलों और फलों से परिपूर्ण था। इसमें चन्दन की विचित्र सुगन्ध भी भरी हुई थी। यह जगत् भी माया का एक उपवन है। प्रकृति के न्याय के अनुसार जहाँ सुगन्धि रहती है, वहाँ कहीं-कहीं कचरों की सड़न भी गंध देती है।

खिलावे मानवी पुष्पो, विषयनु वापरी खातर,
जमावे ने उपाडे काल, माळी मोजनी खातर। ४१९

इस उपवन में काल-रूपी माली अपनी मौज के लिये विषय-रूपी खाद डाल कर मानव रूपी पुष्प को खिलाता है, तड़ता है और बुरा दिखने से फेंक भी देता है।

सदा आ कर्म भूमि मां, गुलो शूं खेलता खीले,
अहा पण खुदनुमाई थी, खुदा ना खार क्यां झीले। ४२०

इस विश्व के काल-रूपी माली के बगीचे में, याने कर्म रूपी भूमि में अच्छे-अच्छे मानवरूपी पुष्प खिलते हैं, परन्तु अपनी सुन्दरता और सुवासितता के अभिमान में ईश्वर का भूल जाते हैं और उनको प्रकृति के धक्के खाने पड़ते हैं।

बचे जो खार थी त्यां सर्प काळा काम क्रोधादि,
धरी बाँधे नफस ना, झेरनी त्यां पाथरी यादि। ४२१

यदि मानव प्रकृति की नाराजी या धक्के से बच जाय तो बगीचे में विद्यमान काम-क्रोधादि रूपी बड़े-बड़े साँप अपने विषय रूपी विष को फुत्कार इन्द्रियों को जकड़ कर बाँध लेते हैं।

अरे गुल खो सजा तारी, मजामां जो जगा जागी,
सनम थी आरजु करने, सुलेहना अंक ले मागी। ४२२

. अरे, ओ पुष्परूपी मानव, तू अपनी मौज में से जरा जाग कर देख तो कि तुझे कैसी सख्त सजा मिल रही है! इस सजा से बचने के लिए तू सनम से *प्रार्थना कर सुलह की शर्त को माग ले, जिससे* सजा की आपत्त से तू बच जाय।

अरे आ काळ माळी मालनी सोये रफा चाहे,
बने ते केम? पण हा—कल्पना कोटे जवा चाहे। ४२३

परन्तु सनम तुझे सजा दिये बिना केवल मागने से सुलह *की शर्त दे देगा, इसका विश्वास नहीं है, क्योंकि काल रूपी माली* फूलों को एक डोरे में गुहने के लिये सुई लेकर आराम से बैठा है। पर क्या सचमुच माली सुई डाल कर हार गुहेगा? ऐसा भी हो तो उसमें एक लाभ ही होगा कि यह हार तेरे स्वामी (जिसकी तुझे लगन लगी है) के गले में जाकर पड़ेगा।

अगर तो काममां तारूं, जीवन आवे वफा लावे,
मळी ने खाकमां पाछो, सनमनुं कण्ठ दीपावे। ४२४

यदि ऐसा हुआ तो तेरा जीवन खाक में मिलने पर भी उपयोगी होगा क्योंकि तू सनम के कण्ठ की शोभा देगा।

अहा! बस जीववु ते आ, खिजर मां लूटवी बागे,
खिजर क्यां? जिन्दगी क्यां? दुःख क्यां? दुनिया मळे म्हारो। ४२५

यदि ऐसा हुआ तो यही सच्चा जीवन है क्योंकि इस रीति से *जीवन की कीमत मिल जायगी।* जैसे पतझड़ ऋतु में भी बसन्त की बहार मिलेगी। यदि ऐसी वस्तु सचमुच मिल जाय तो फिर पतझड़ रूपी जिन्दगी या दुःख की दुनिया की किसको परवा है! जब श्री गुरु ने प्रेरणा कर साधक को चेता दिया कि काल रूपी माली क्या करनेवाला है तब साधक धैर्यपूर्वक काल से कहने लगा—

अरे ओ मालिडा ! तोडे, भले तुं खीलता मुजने,
धरीने सोयनां काटे, भले तुं छेदजे मुजने। ४२६

हे माली, तू मुझे खिलने से पहले ताड़ कर सुई की नोक से भले ही छेदे—

भले पुष्पो बिजा साथे, लपेटी भेरवी ने तूं,
बनावी हारना रूपे, सदाने बांधजे पण तू। ४२७

या सदा के लिये डारे में दूसरे फूलों के साथ लपेट कर उसका हार बनावे,

अरे जालिम, करगरतानी, विनन्ती दीन आ दिलनी,
रुमाता प्यार ना पन्थे, पडेला पन्थि आ दिलनी। ४२८

पर हे जालिम, इस आजिजी करते हुये, घबराये हुये, प्यार के पन्थ में पड़े हुये पन्थी के दिल की नम्र विनय है कि—

विनन्ती सांभळी काने, जरा टुक ध्यान धारामां,
दयानी लागणी लावी, अगर दिल होय तारामां। ४२६

कान से सुन कर, ध्यान में रख कर, यदि तेरे दिल में कुछ दया हो तो मुझ पर दया दिखा कर—

विनन्ती एटली मारी, पराणे प्हेरमां लेजे,
बनाव्यो हार तें मुज थी, सनमना कंठमां देजे। ४३०

मेरी इतनी विनती ध्यान मे लेना कि मेरा जो तूने हार बनाया है, उसका सनम के कंठ में जरूर पहनाना।

विनन्ती तूं नहीं माने, अरे दाया नहीं तूने,
अरे ओ काळ जालिम तूं, तकावी क्यां मळे तूने। ४३१

पर हे काल, तू बडा जालिम है। मैं वृथा तुझसे प्रार्थना करता हूँ क्योंकि मुझे विश्वास है कि तू मेरी कुछ सुननेवाला नहीं क्योंकि तेरे दिल में दया नहीं है। पर मेरे जैसे गरीब से तुझे हार का बयाना भी मिलनेवाला नहीं।

पण्तु इश्क जो साचो सनममा प्रेम छे म्हारो,
तुने नाणुं चुकावी हाथ, थी हैये धरे प्यारो। ४३२

खैर, कुछ हर्ज नहीं। यदि सनम में मेरा सच्चा प्रेम होगा तो सनम ही तुझे हार की कीमत चुका कर हार खरीद लेगा और अपने आप ही अपने गले पहन लेगा।

अहा ओ! प्रेम, ओ तुं, प्राणना अन्तर तणो जादु,
अहा आनन्द ने झरणे, झरी व्हेनो महा जादु। ४३३

फिर साधक प्रेम के लक्ष्य में आकर निश्चयात्मक रूप से कहने लगा कि अहा प्रेम! तू मेरे प्राण के अन्दर रहनेवाला जादू है। तू आनन्द के झरने में झरता हुआ महान् जादू है।

गुरू थइ प्रेमना महा मन्त्रनो, उपदेश प्रेमीने,
अहा ओ तु कहे व्हाला, सम्भल हुशिआर प्रेमने। ४३४

हे प्रभु, तू गुरु बन कर प्रेम के महा मन्त्र का उपदेश प्रेमियों को करता है। तू जिसको प्रेमी बनाता है, उसको चेताता है कि सँभल, यह कांटे से भरा हुआ जग है। इसको भूल मत जाना। इसलिये होशियारी से चल।

कसोने कण्ठ झालीने, महा आपत्तिमां ताणी,
मुको शुं आ कसटा ये, परिक्षा शुं जुआ जाणी। ४३५

पर प्रभु, तू इतना सरल भी नहीं है। तू तो प्रेमी को कण्ठ से कस कर, पकड़ कर प्रत्येक आपत्ति का अनुभव करा देता है, जिससे

पंछे से दुःख न हो परन्तु हे प्रभु, तुम मेरी ऐसी परीक्षा करके क्यों सताते हो!

अहा चरणे मुओ जे, प्रेमनी झाळे बळेलो जे,
अरे आ शूं? मरेला ने, वळी मारे मळे शूं जे। ४३६

जो पहले से ही चरणों में मरा पड़ा है और प्रेम रूपी अग्नि में जला हुआ है, ऐसे मरे हुए को मारने से तुमको क्या मिलता है।

बळेला प्रेमना झेरे कपाता मृगशा तफडी,
अरे ओ गारुडो हेते जीव.डो वाजवो नफरी। ४३७

हे प्रभु, मैं तुम्हारे प्रेम रूपी विष में जल रहा हूँ और एक कटते हुये मृग की तरह छटपटा रहा हूँ। तुम प्रेम की बाँसुरी में गारुडी बजा कर विष में जले हुये को जिलाओ।

जुओ आं वांसळीमां, गारुडी मन्त्रो वगाडे छे,
सुणो शूं ते कहे-हा! आ, महा मधुरी वगाडे छे। ४३८

फिर थोड़ी ही देर में साधक को बाँसुरी में विष को उतारनेवाला गारुड़ी मन्त्र सुनाई देता है और वह कहने लगा कि वाह प्रभु, बहुत मधुर बंसी बजा रहे हो।

अहा आ मीठडा स्वरनी, सुधामय धार आवी शूं,
अहो प्रेमे तडफतानां दझेला कान लावी शूं! ४३९

इस प्रेम से छटपटाते हुये के इस जले हुये के कान में इस मीठे स्वर की अमृतमय धारा का सिंचन हो रहा है।

कहे छे प्रेम थी घेला! सदा ते आ रसीली छे,
रसीला प्रेमना व्यंगे, प्रिया प्रेमे कसेली छे। ४४०

तब सनम कहता है कि हे प्रेम के पागल, मेरी यह बाँसुरी रसीली है और प्रेम करनेवालों को प्रेम के व्यंग में कस देती है।

मरीने जीववानो मन्त्र, रसरसता फटाणा छे,
हलावे चित्त ने पेमी घणे ऊंडे डटाणा छे। ४४१

प्रेम का व्यंग तो मर कर जीने का मन्त्र है। वह चित्त को हिला कर उसमें घुस कर बहुत गहरा गडा हुआ है।

मरीने जीववानो यन्त्र, छे प्यारा तणुं चुम्बन,
मधुरा धर लखायेलुं, अमी आंखे महा पूजन। ४४२

मर कर जीने का यन्त्र प्रियतम का चुम्बन है और वह मीठे अवरोष्ठ में लिखा हुआ अमृत-भरी आँखों के महापूजन का विधान है।

मरीने जीववानो तन्त्र, वाम्मी प्राण आलिङ्गन,
जहां यन्त्रो तथा मन्त्रो, फुरे आशिक उठे छनछन। ४४३

मर कर जीने का तंत्र सनम से चिपक कर प्राणालिंगन करने में छिपा है। उस प्रिय आलिङ्गन से सम्पूर्ण मन्त्रों और यन्त्रों की सिद्धि होती है और आशिक छनछन करता उठ बैठता है।

महा मायापती! शुं नाथ, भक्तो ने रमाडे तूं,
हसावे तूं, रडावे तूं रमाडे तूं जमाडे तूं। ४४४

हे महा मायापति, भक्तों को इतना सताना कहाँ की नीति है! तू भक्तों को हँसाता है, रुलाता है, खेलाता है, खिलाता है, यह सब तू करता है।

हजारो खेल देखाडी, मरी खाके खरावे तूं,
वळी पाछो उठाडी प्रेमिने खोळे चढ़ावे तूं। ४४५

इस प्रकार तू भक्त को हजारों खेल दिखा कर खाक में मिला देता है और जब वह परिपक्व हो जाता है तब तू उसको उठा कर कलेजे से लगा कर गोद में बैठाता है।

सदा आनन्दनी लहरे, चढावी ने लडावे तूं,
रहे जो तूजने वळगी, खरो मारग बतावे तूं। ४४६

वाद को आनन्द की लहरों में चढा कर प्रेम से लाड़ करता है, और जो भक्त आपत्तियों में भी तुझे पकड़ कर रहता है, उसको तू सच्चा मार्ग दिखाता है।

धरी दृढता तणो खन्जर, महारिपु द्वैत कापे तूं,
निजानंदे अहा रोळी, महा जंजाल कापे तूं। ४४७

दृढता रूपी खंजर हाथ में लेकर तू अपने भक्तों के सभी द्वैत-शत्रुओं को काट डालता है और अपने आनन्द में भक्त को डुबा कर उसके सारे बड़े-बड़े झंझटों को दूर करता है।

जुओ आ स्वातिना बुन्दे बनेलुं प्रेमथी गोती,
कहाडयुं में गयु परा ते, प्रियाना कण्ठमां मोती। ४४८

देखो, वह स्वाति के बूंद से बना हुआ मोती (प्रकाश) मैंने ढूंढ कर हाथ में लिया पर वह उड़ कर प्रिया के कंठ में चला गया।

भक्तियोग (एकाग्रता भाव दर्शन)

महावनमां भटकतो आ, तपस्वी पश्चिमे आवी,
ऋतु वर्षातणी लहेरे, तणातो तान तोडे छे। ४४९

इस उपदेश के लेखक का कहना है कि प्रभु को जानते हुये भी उसको एक बार प्रभु के वियोग का अनुभव हो गया। तब वह वनों में भटकता-भटकता, हिन्द के पश्चिमी प्रदेश में आ पहुँचा। उस समय वर्षा ऋतु थी। उसकी लहरों में खिंच कर वह प्रभु के भजन गाने लगा।

रमी गोदा गदा पांचे, वटोमां राम सीताना,
करी दर्शन चढ्यो मुम्बा, पुरी ज्यां जाल जोडे छे। ४५०

इस प्रकार भटकता हुआ वह गोदावरी नदी के पास स्थित पंचवटी में आया और वहाँ राम-सीता का दर्शन कर जाल से भरी हुई मुम्बा-पुरी (बम्बई) में आया।

जडायो श्री कनैयानी, गुहाने मोखरे जईने,
समयथी लाग पामीने, थता छूटो गयो वही। ४५१

मुम्बई में श्री कन्हैयालाल के घर के दरवाजे पर आकर नग की तरह जड़ गया। थोड़े समय के बाद फिर मौका देखकर वह वहाँ से चल दिया और—

फरफूं पांख फफडावी, मनोमय मानना बागे,
महा आ मोहनी रात्रे, पहेरी पोपटे चूडी। ४५२

जैसे शुक पंख फटफड़ा कर भागता है वैसे ही वह मनोमय मान-रूपी बगीचे में आकर ठहरा और जन्माष्टमी के दिन रात को प्रभु श्री का ध्यान करता हुआ आनन्द में इतना मस्त हो गया कि एक सौभाग्य-वती स्त्री को अपने सौभाग्य की प्रेममय चूड़ी पहनने से जो आनन्द मिलता है, उसका वह अनुभव करने लगा।

अब लेखक ने यहाँ जो वर्णन किया है, वह उसके योगी रूप का अनुभव है—

ह्वाला कृष्णना रासे, रंगेली काळजुं घोती,
अहा आ प्रेमनी धारा, कहुँ के नाथनी चूडी। ४५३

भगवान् कृष्ण के रास से रंगा हुआ कलेजा गोपी धोती है, ऐसा अनुभव वह करने लगा और सोचने लगा कि इस आनन्द को प्रेम की धारा कहूँ या नाथ की सौभाग्य-चूड़ी का आनन्द कहूँ।

तणातो प्यार पारावार, रेलं छेल छोळो मां,
गयो भूली जगतना, जागता थापा तणी मूडी। ४५४

उस समय लेखक का प्रेम या भाव बहुत बढ़ गया था। वह प्रेम नदी के पारावार पूर में निरन्तर लहरों की तरंगों में तैरने लगा और इतना मस्त हो गया कि उसके गुरु ने ज्ञान-योगादि जो कुछ कहा था, वह सब भूल गया।

परन्तु कर्म तूफाने, अचानक हचमचावीने,
जगाड्यो ते बिचारा ने, उठ्यो ते भुमती आँखे। ४५५

अब उस मस्ती से कर्म-रूपी तूफानों ने उस योगी को अचानक जगा दिया, और जैसे नशा-भरा हो वैसी आँखों से वह जाग उठा।

अरे आ शूं, गयो क्यां, प्राणनां जे प्राणथी व्हालो,
करूं शूं? जाऊँ क्यां गोतूं? मळे क्यां? विश्व आ भांखे। ४५६

वह प्रेम की मस्ती में से जाग उठा था। इसलिये चारों तरफ अपने प्रेमी को ढूँढने लगा पर प्रेमी का दर्शन न होने से जोर से बोलने लगा—अरे, यह क्या! मेरे प्राण से भी प्रिय ऐसे मेरे प्रियतम कहाँ चले गये! अब मैं क्या करूँ! कहाँ जाऊँ! इस तेज-रहित विश्व में मेरा प्रभु कहाँ मिलेगा!

पड्यो रोई प्रभु हे हाय, जीवन प्राण आवोने,
करी काळुं गया क्यां? आंधळानी आंख लावोने। ४५७

इतने पर भी कुछ न हुआ। तब वह चिल्ला कर रोने लगा और कहने लगा कि—हे प्रभु, हे जीवन के प्राण, आप आओ, कहाँ चले गये! अब तक मैं आपके प्रकाशमय स्वरूप को देख रहा था, परन्तु आपके चले जाने से सब काला ही काला दिख रहा है। मैं अंधा-सा हो गया हूँ। मेरी आँखें वापस दीजिये, जिससे पहले की तरह मैं उ` प्रकाश को देख सकूँ।

अरे मारा जीवनना चोर ! ओ ! आ शूं करो टीखल,
छुपाया हो हृदयनी आ, गुहामां तो बतावोने। ४.

फिर वह जरा मिजाज गरम करके कहने लगा—मेरे जीवन चोर, यह क्या हँसी कर रहे हो ! मुझे दिखाओ, मेरे हृदय की गुहा छिप कर तो नहीं बैठे हो !

प्रभु बोलो, हरे बोलो, रमत आ ना गमे मुजने,
गमत जो होय करवी तो, इशारा थी बतावोने। ४५६

बोलो, आप कहाँ चले गये ! मुझे आपका यह खेल पसन्द नह है। यदि आपको यही खेल करना है तो मुझसे इशारे से कह दीजि कि मैं खेलना चाहता हूँ।

अगर ना आवचू धागे, दिले टुक म्हेर आणीने,
सिसकताने तडफताने, मरण आपी पतावोने। ४६०

यदि आप आना नहीं चाहते तो दयामय, आपका दिल बड़ा है। मेरे ऐसे छटपटाते सिसकते को मृत्यु देकर खतम कर दो, जिससे छुटकारा हो जाय।

अरे ओ ! कालुडा ! काळी, कलापि कोकिला कूजे,
पपीहा मेघनी गडगड सुणीने काळजूं ध्रूजे। ४६१

अरे, ओ कालुडा (भ० कृष्ण), देखो तो, आप अकेले ही काले नहीं हो। यह मोर, कूजती हुई कोयल और पपीहा—मुझे सब काला ही काला दिख रहा है। इस एकान्त वन में मेघ का गड़गड़ाना सुन कर मेरा कलेजा काँप रहा है।

धरी शशिखंडना धनुषे, केकारी कूकनां बाणो,
अरे ! आ पुष्प धन्वा, मारतो पण मोतना सूझे। ४६२

इस चंद्ररूपी धनुष पर कामदेव कोयल की कू-कू और पपीहा के पीयु रूपी शब्दबाण मार रहा है तो भी मुझे मृत्यु क्यों नहीं सूझती !

बळेला इश्कनी आगे, दमेला हायनी झाळे,
मरेला मानिनी मारे, गळेला प्रेमना हीमथी। ४६३

हे प्रभु, देखो, मेरी क्या दशा है ! मैं प्रेम की आग में जल रहा हूँ और हाय के जाल में जल रहा हूँ, प्रेम की मार से मर रहा हूँ और प्रेम की बरफ से गल रहा हूँ।

हृदय फाटी थयू चूरो, पडी पत्थर परे प्यारा,
जुदाई ना महावज्रे, फटाव्यु धूळना क्रमथी। ४६४

हे प्रियतम, मेरा हृदय पत्थर पर टकरा कर फटकर चूर हो गया है, और वियोग-रूपी वज्र की मार से धूल की तरह उड़ने लगा है।

पड्यो मूर्छा, फरी जाग्यो, उठ्यो ने ढूंढतो चाल्यो,
पडे पण उठतां फावे, भरेलो प्रेमना जोशे। ४६५

इस प्रकार कहते-कहते वह गिर पड़ा और मूर्छित हो गया। फिर जाग पड़ा और अपने प्रेमी को ढूँढता हुआ आगे चलने लगा। उसका कलेजा प्रेम से भरा हुआ था। इसलिये बार-बार गिर जाता था। फिर उठ कर चलने लगता था।

कहीं पग जाय छे लईने, नहीं देखे छतां चाले,
अरे आ प्रेमनो घेलो हाला हालने जोशे। ४६६

उसके पैर कहाँ जा रहे थे, यह दिखता नहीं था पर वह चल रहा था। प्रेम में पागल अपने प्रेम के जोश में आगे बढ़ रहा था परन्तु उसके पैरों में ताकत नहीं थी, और कुछ होश भी नहीं था

बबडतो प्रेम जे बोले, फफळतो काळने खोळे,
गबडतो गेंद ने तोले, ससरती सांस हा बोले । ४६७

यह प्रेम के भाव में कुछ बड़बड़ाता था और काल की गोद में पड़ा हो, वैसी करुणा से चिल्लाता था। जैसे एक गेंद लुढ़कता हो वैसे ही वह लुढ़कता जाता था और हाय की आवाज से निःश्वास छोड़ता जाता था।

दबडदड दोडतो डोले, कदी खखडी हसे होळे,
कदी रडतो वदन मोळे, अहा लूंट्यो दिने धोळे । ४६८

कभी वह लड़खड़ाता हुआ दौड़ता था तो कभी धीरे कभी अट्टहास पूर्वक हँसता था कभी दीन बन कर रोता था, और जैसे दिन के उजेले में लूटा गया हो, ऐसा अनुभव कर रहा था।

कदी जई वृक्षने पूछे, कदी सर्पादिने मृगने,
मृगाधिपने महावनना, पशू आकाश वा खगने । ४६९

इस प्रकार उसकी दशा खराब होती गई। वह अपने प्रेमी का हाल कभी पेड़ से, तो कभी सर्प से, मृग से, मृगराज से और महावन के पशुओं और अवकाश में उड़नेवाले पक्षियों और—

लता पत्रादि पुष्पोने, फलोने मेघने जलने,
अकाशे चूमता ऊँचा, शिखर पर्वत तथा तलने । ४७०

लता, पत्तो, फूलों, बादलों, वर्षा और बड़े-बड़े पहाड़ों, जो आकाश को छू रहे हैं, उनके शिखरों से और तराइयों से पूछने लगा।

अरे ओ, पामरो म्हारा, हृदय नो चोर चोराव्यो,
बतावो तो कुशळ आजे, नहीं तो केर छे काळो । ४७१

जब उनसे कुछ जवाब नहीं मिला तब गुस्से में आकर वह कहने लगा कि अरे—ओ पापियों, तुमने मेरे हृदय के चोर को चुराया है। उसे बताओगे, तब तो कुशल है नहीं तो मैं बड़ी आपत्ति फैला दूँगा।

उठाडूं दीन दुनिश्रा ने, जई घोळूं समुन्दरमां,
समुन्दर जो छुपावे नो, पछी श्रा पेर संभाळो। ४७२

मैं कैसी आपत्ति खड़ी करूँगा, उसे भी सुन लो। मैं दुनिया को उठा कर समुद्र मे डुबा दूँगा। यदि समुद्र ने मेरे प्रियतम का हाल न कहा तो—

सुकावूं योगनी अग्नि, उडावू अग्नि ने पवने,
पवनने शून्यमां रोकी, करू हूं स्तब्ध आ खगने। ४७३

योग की अग्नि से समुद्र को सुखा दूँगा। अग्नि को पवन में उड़ा दूँगा और पवन को शून्य में रोक कर इस अवकाश को स्तंभित कर दूँगा (यह भूतशुद्धि का भाव है)।

अरे आकाशने रोळी, धरू हूं शब्द मां घोळी,
समय गति सर्वने चोळी, करू संहार आ जगने। ४७४

मैं आकाश को मसल कर शब्दों मे घुला डालूँगा। इतना ही नहीं समय गति आदि सबको मसल कर इस जगत् का संहार कर डालूँगा।

अरे श्रो वापला व्हाला, जरी दिलमां दया लावो,
कदी बोले कदी मीठूं, पछी श्राडो जमी वाटे। ४७५

इस प्रकार वह क्रोध में बोला। फिर शान्त होकर कहने लगा–अरे ओ प्रियतम, आप मेरे लिये अपने दिल में थोड़ी तो दया लाइये। ऐसे कभी कड़वे और कभी मीठे शब्द बोलने लगा। फिर जमीन पर आड़े लेट कर वह हाथ जोड़कर पेड़-पत्तों पशु पक्षियों आदि से कहने लगा—

महारो प्राणथी प्यारो, बतावो मांगशो ते हूं,
तमोने मांगता आपूं, बतावो क्यां कई वाटे। ४७६

मेरा प्राणों से भी प्यारा प्रियतम खो गया है। यदि तुम मुझे

बतायेंगे तो मैं तुमको, जो कुछ माँगोगे, वह दूँगा। यह बताओ कि वह किस रास्ते से गया है ?

गयो ते प्राण चोरावी, लूंटी मारी हणी मुजने,
मळावो तो दऊं लावी, कहो जे जोइये मुजने। ४७७

वह मेरे प्राणों को चुरा कर मुझको लूट कर मार से घायल करके चला गया है। उसको अगर तुम मिला दोगे तो मैं, जो चाहोगे, वह तुमको ला दूँगा।

मळयो उत्तर न त्यां कांइ, झझकतो आंसुये झरतो,
ककळते कंठ आलापी, दिशाओ पंचमे भरतो। ४७८

फिर जब कोई जवाब नहीं मिला तब वह आवे पागल की तरह आँसू गिराता हुआ और करुणा-भरे कंठ से पंचम स्वर से दसों दिशायें गूँज उठें, इस प्रकार चिल्लाता हुआ रोने लगा।

चढ्यो सह्याद्रिना शिखरे, महा शोभा भर्यूं उपवन,
वसे ज्यां मोहना खाडे, तरेला तारता मुनीजन। ४७९

जब किसी ने उसकी धमकियाँ और विनयों को नहीं सुना तब वह सह्याद्रि के शिखर पर चढ़ गया। उसको सह्याद्रि एक अनुपम उपवन लगा। इस पहाड़ के ऊपर मोह के सङ्कट को पार कर दूसरों को उबारनेवाले बड़े-बड़े तपस्वी रहते थे।

ठरी उभो ठेकाणेथी, समेटी ने खरेलुं मन,
अहा शं इन्द्रथी स्वर्गे, रचायुं आज नन्दनवन। ४८०

अब वह अपने बिखरे हुये मन को समेट कर चुपचाप वहाँ खड़ा रहा। उसे देखने पर उसको लगा मानों वह इन्द्र का स्वर्ग में रचा हुआ बगीचा है।

जुओ लीली जिमी खिलेल, पुष्पो ये खिले केवां,
फलम कीधा कलेजामां, प्रियानी लागणी जेवी। ४८१

वहाँ की जमीन हरियाली से और खिले हुये पुष्पा से खूब शाभायमान हो रही थी और जैसे कलम किये हुये कलेजे में अपने प्रियतम के प्रति सलग्नता उभरती है, वैसे ही वह जमीन पुष्पों से खिल रही थी।

खिल्यां पुष्पो उठीने, पाथरी पाछा सूए केवा,
विरहि प्रेमे उठीने हा प्रिया ! बोली पडे जेवा। ४८२

जैसे वियोगी अपने प्रेम के जोश में मस्त बन कर अपने प्रिय को सम्मुख न देखने से मूर्छित हो जाता है, वैसे ही खिले हुये पुष्प फिर मुरझा कर मो से गये दिखते थे।

मणी पन्ना समी लीली छतां पण भूमि सूकी छे,
पियारा नाथना लीला, रगेला प्रेमथी जाणे। ४८३

वैसे ही सह्याद्रि की जमीन पन्ने जैसी हरी होने पर भी उसको सूखी लगी।

प्रियानूं चित्त छे लीलूं, परन्तु विश्व वहेवारे,
जगतना भावथी सूकु, रहेलूं तू न शू जाणे। ४८४

जैसे अपने प्यारे प्रियतम का चित्त प्रेम मे रगा हुआ हरे रग का है पर विश्व के प्रवाह मे बाह्य व्यवहारा में सूखा लगता है—

अहा आ रंग बेरंगी, जमी पर पाथर्या पुष्पो,
वनस्पतियो थकी पाक्यां खिलेला शोभता पुष्पो। ४८५

उस जमीन के ऊपर वनस्पतियों मे सुशोभित और रग-बिरगे पुष्प खिल कर बिछे हुये थे।

जुओ जाणे रंगीली रंग भूमिमां बिछावेलो,
गलीचो भावना अंगे, प्रियाना भाव भावेलो। ४८६

मानो अपने प्रियतम के अत्यन्त प्रिय रंगों में रंगा हुआ कालीन-जैसा उस रंगभूमि में बिछा हुआ था।

लताओ वृक्षथी वळगी, नमेली फुलना भारे,
मनोगत् भावथी नीचे, निहाळी नाथने वाके। ४८७

किसी जगह पर लतायें वृक्ष से लिपट कर चढ़ रही थीं और वे फूलों के भार से नीचे झुक गई थीं तो ऐसा मालूम होता था मानों अपने मन के भावों से लज्जित होकर वे दोहरी होकर अपने प्यारे का आलिङ्गन कर रही हों।

फुलोना भारे लटकेली, लताने ऊंचके शाखा,
प्रिया आलिंगने, कुच भार, धारी चुंबतो आजे। ४८८

फूलों के भार से लटक कर झुकी हुई लता को देखकर यह लग था मानों यौवन-भरी प्रिया के कुच भार का आलिङ्गन कर वृक्ष ल को चूम रहा है।

जुओ आ वृक्षनी छाया, तळे पंथी विसामो ले,
उठे ने पांदडा तोडे, हणी पत्थर फुळो पाडे। ४८९

इस प्रकार वह उपवन का सौंदर्य देख रहा था कि उसको ए वृक्ष की छाया में एक पथिक विश्राम करता हुआ दिखा। इतने में व पथिक उठा और वृक्ष के पत्ते तोड़ने लगा और पत्थर मार कर उसने फूल-फल तोड़ने लगा।

पछी ते लाकडां कापी, लईने ताढमां तापे,
परन्तु आ बिचारुं वृक्ष, बोले ना पडे आडे। ४९०

फिर वह उस वृक्ष की सूखी हुई लकड़ी काट कर उन्हें सुलगा कर तापने लगा। जिस वृक्ष के नीचे बैठ कर उसने विश्राम किया था, उसकी यह दशा करने पर भी उस वृक्ष ने कुछ भी विघ्न नहीं डाला।

जुओ आ पर्वतो मोटा, सहे वरसाद वा तपने,
कहे ना दुःख कोइ ने, रडे ना जोयता खपने। ४६१

देखो, बड़े-बड़े पहाड़ बरसात, पवन और सूर्य के ताप को सहन करते हैं पर किसी से अपने दुःख की बात कहते नहीं कि इस वस्तु की यहाँ कमी है।

शिरे आवी पडे र्हेवुं, धरीने ढाल दढतानी,
हजारो शस्त्रनां मारो, पडे पण चूं, चरा, शानी। ४६२

अरे, तब मेरा यह रोना भी वृथा है। वृक्ष और पहाड़ की तरह अपने सिर पर जो कुछ आपत्ति आ जाय, उसको सहन करना ही सीखना चाहिये। चाहे एक साथ हजारों शस्त्र अपने पर टूट पड़े तो भी चीं-चूँ तक नहीं करनी चाहिये।

अरे ओ साधुओ, साधन तमारू वृक्ष जेवु शुं,
नहीं तो वृक्षथी शीखो, समोने ते नठारू शुं। ४६३

ऐसा सोच कर वह कहने लगा कि अरे, साधुओ, तपस्वियो, आपका साधन क्या इस वृक्ष के समान परोपकारी और सहनशील है? यदि ऐसा नहीं है तो वृक्ष और पहाड़ो से सीखने में क्या बाधा है? ऐसा करने में आप लोगों को क्यों बुरा लगेगा?

करे जो दुष्ट माठुं पण, तमो मां शान्तिथी चूको,
तदा ते माधुरी मधुरी, सदा चाखो नहीं तो शुं। ४६४

यदि आपके साथ कोई बुराई करे तो भी आप अपनी शान्ति को मत खोना। यदि आप ऐसे समय में शान्ति रखेंगे तो आप अपनी तपस्या की मधुर माधुरी चखेंगे।

कहीं भरणा भरे झरझर, झरीने निर वहे निर्मल,
कहीं वे पर्वतोना मध्य, थी धारा वहे घडघड । ४६५

उस उपवन में झरनों का निर्मल पानी झरझर शब्द करता हुआ गिर रहा था । कहीं-कहीं दो पहाड़ों के मध्य से पानी की धाराएँ बह रही थीं ।

प्रिया उर मध्यमां लावी, रहेली माळनी हलचल,
बतावे आ बनी तेवी, प्रियाना रूप ने नेचर । ४६६

यह दृश्य देख कर ऐसा भास हो रहा था मानो प्रिया के गले में मोतियों की माला की हलचल हो रही है, जैसे प्रकृति इस भाव में प्रिया का रूप दिखाती हो ।

एवा रस रासनी धारा, सनमना प्रेमथी वहेतो,
रह्यो पीतो बनी अलमस्त, नी मस्ती, झरी वहेतो । ४६७

इस प्रकार विचार करता करता वह अपने प्रियतम के ध्यान में फिर मग्न होने लगा । अपने प्रियतम के प्रेम की धारा का, पानी के झरने की धार की तरह, प्रेम की मस्ती में अलमस्त बन कर वह पीता हुआ पड़ा रहा ।

थइ के ते पड्यो गाफिल, जई भू मां पियारे हा !
छिणयेलो सपायेलो, गुमेलो चोर प्यारो हा ! ४६८

जैसे जैसे मस्ती बढ़ती गई, वैसे वैसे वह गाफिल सा होता गया और अंत में 'हे प्यारे' कहता हुआ वह जमीन पर गिर पड़ा ।

प्रगटियो प्रेमिनुं, माथू लइने अंकमां धारी,
करी चुंबन महा प्रेमे, मधुर कर काळजे धारी । ४६९

सहसा इसी समय उसके छिपे हुये खोये हुये प्रियतम (चोर) ने

प्रगट होकर उसका सिर अपनी गोद में लेकर प्रेम से चुम्बन किया और अपना हाथ उसके कलेजे पर रख कर बोला—

कहे उठ शूं रिसाये छे, रमतमां शूं खिजाये छे,
रमत आ आपणी प्यारा, रमे शूं दुःख थाये छे। ५००

अरे, उठ खड़ा हो। यह क्या, नाराज होकर क्यों बैठा है? यह तो हम दोनों का खेल है। इसमें नाराज होने की क्या बात। क्या तुझे खेल पसन्द नहीं है? क्या उसमें तुझे दुःख होता है?

अरे ओ प्राण सम प्यारा, तजीने प्राण रहेवाय,
कहो ते केम? शूं तूं चित्तमां खिजी दुःखी थाय। ५०१

अरे, तू तो मुझे अपने प्राण के समान प्रिय है। क्या कोई अपने प्राणों को छोड़ कर जी सकता है? क्या तू अपने मन में गुस्सा होकर दुखी हो रहा है?

अहो जे हुं, खरो ते तूं, नहीं कंई भेद छे प्यारा,
अमे वे एक बेकी नी, रमतमां कां फसे प्यारा। ५०२

अरे, जो मैं हूँ, वही तू है। तेरे-मेरे में कुछ भेद नहीं है। अरे प्यारे, तू ऐसा भेद मान कर द्वित्व के फेर में फँस कर क्यों दुखी हो रहा है?

सदा हालु हृदय म्हारूं, अदाथी आपने खोळे,
घणे दहाडे मळ्या, पण हा! मळी को आपने छोडे। ५०३

प्रभु के ऐसे शब्द सुन कर वह प्रभु से कहने लगा कि हे प्रभु, मेरा यह हृदय, जिसपे ऊपर आपने हाथ रक्खा है, बड़ी अदा से आप को ढूँढ रहा है (अथवा आपकी गोद में बड़ी अदा से पड़ा हुआ है)। आप बहुत दिनों के बाद मिले हैं तब आपको छोड़ने को किसका मन हो सकता है—

लियो 'मोती' तणा हारो, समर्पे सीपथी गोती,
प्रभु आ हारमां लटकी, रमे ताहरे हृदय **मोती**। ५०४

हे प्रभु, समुद्र की बड़ी-बड़ी सीपों में से निकाला हुआ यह मोत का हार आपके गले में अर्पण करता हूँ, जिसमें हार के बीच में ज मोती लटक रहा है, वह आपके हृदय पर लटका करे।

दिव्य योग (गजल)

सबब शूं जुओ विश्व हारी गजबमां,
अजब आ जणाशे जुओ ना नजबमां। ५०५

इस विश्व में सुख को हरण करनेवाली आपत्ति क्या है, इसका कारण ढूँढने से नहीं मिलेगा। जिसको सब सुख मानते हैं, उसको यदि एक आदमी कहेगा कि यह बुरा है या आपत्ति का मूल है तो दुनिया उसको नहा मानेगी। इतना हा नहीं, ज्योतिष शास्त्र में भी आँखे लगा कर देखोगे तो भी वह नहीं मिलेगा क्योंकि देवता लोग भी सुख में फँसे हैं। केवल यही जान सकोगे कि यह एक आश्चर्य-जनक बात है।

शशी कोटि काशे चिदातम प्रकाशे,
जुओ विश्व क्यां ते अकाशे प्रकाशे। ५०६

करोड़ा चन्द्रमाओं के शान्तिमय काश में चिदात्मा के प्रकाशमान होने पर भी दुनिया उसको देख नहीं सकती क्योंकि वह काशमय प्रकाश अत्यन्त सूक्ष्म होता है।

अहा विश्वमां मानसी आ सरोवर,
मर्यू छे जिगर व्यक्ति मावे महासर। ५०७

इस विश्व में मनरूपी एक बहुत बड़ा मानसरोवर है। यह सरोवर व्यक्तियों के मनरूपी जल से भरा हुआ है।

वहे गंग सिन्धु द्विधारा यहांथी,
सुविद्या अविद्या उभय भेद त्यांथी। ५०८

जैसे मानसरोवर में से गंगा और सिन्धु दो नदियाँ निकलती हैं, वैसे ही इस मनरूपी सरोवर में से विद्या और अविद्यारूपी दो धारायें निकलती हैं।

विषय वा वहे, जोर झकजोर तूफां,
रह्युं ऊछळी मोजमां तोड तूफां। ५०९

विषयरूपी हवा के तूफान से इस सरोवर के ऊपर खूब जोरों से हवा चल रही है। उससे सरोवर के पानी की तूफानी लहरें मौज में उछल रही हैं।

अडाडा धमाधम चढे आथडे ते,
खरे जो करारो धपाडे पडे ते। ५१०

जब लहरें ऊपर चढ़ कर टकरा कर नीचे आती हैं तब अड़ाड़ा-धमाधम ऐसी खूब आवाज सुनाई देती है। कोई लहर ऐसी भी आ जाती है, जिससे किनारे पर की मिट्टी खिसक कर खर कर नीचे गिरती है।

घणी नाव हे नाखुदा ऊथले त्यां,
वचावे खुदा ना गदा ऊथले त्यां। ५११

हे ना खुदा! वहाँ बहुत सी (तपस्वीरूपी) नावें उलट जाती हैं और उनको प्रभु बचावे तो ही बच सकती है नहीं तो उलट ही जायेंगी।

अहा सर्वदा पूर्णिमा, आत्म हिमकर,
वणी चन्द्रिका ना वधे ना घटे दर। ५१२

अहा, आत्मारूपी हिमकर चंद्रमा सदा पूर्णिमा के चंद्र की तरह अखंड होता है। उसकी चंद्रिका दूसरी तिथियों की जैसी बढ़ती या घटती नहीं।

जुओ लहेर जे वठती चन्द्रिकामां,
चळकती जडी हीरले उर्मि रामा। ५१३

उस चंद्रिका में इस सरोवर के पानी में जो लहरें उठती हैं, वे चाँदी की चमकती हुई किनारी-सी लगती हैं और उर्मिरूपा स्त्री की साड़ी हीरा जड़ित किनारी हो, ऐसी दिखती है।

लसी हुं पड्यो झालवा शुभ्र लहेरो,
हशे हीरलानो वन्यो दिव्य सहेरो। ५१४

उस चमकती हुई किनारी को पकड़ने के लिए मैं पानी में उतरा और मुझे दिखा मानों हीरे का दिव्य सेहरा बनाया गया हो।

रह्यो झालतो पाणिमां पाणि आवे,
गया हीरला पाणिमां पाणि नावे। ५१५

मैं बहुत देर तक पानी में उसको पकड़ने के लिए रहा पर हाथ में पानी के सिवा कुछ न आया। सब हीरे पानी में मिल जाते थे और हाथ में एक भी न आया।

फरू खोळतो ओसना मोति मोती,
जडे क्यां पडे भालतां जाय जोती। ५१६

जैसे ओस के मोती को पकड़ने के लिए जाने से मोती के बदले पानी ही हाथ में आता है वैसे ही यहाँ हीरे कहाँ से हाथ आते?

जुओ सुरा आ विश्वमां एम भासे,
नहीं सत्य आरो जणाये अमासे। ५१७

हीरे और मोती को लेने जाने में जेसे वे पानी हो जाते हैं, वैसे ही इस विश्व में सुख को हाथ मे लेने को जाते हैं और दुःख हाथ लगता है। केवल आभास में सत्य क्या है, यह नहा दिखता।

सुखो आत्म आनन्द नो दिव्य भास,
देखाये सरे मानसी दिव्य काश। ५१८

सुनो, प्रत्येक को अपने आत्मानन्द का दिव्य काश मानस सरोवर मे दिखता है परन्तु वह शुद्ध काश नहा है।

अरे सुख रूपे सदा बाह्य देहे,
जणाये न छे सत्य त्यां गेह देहे। ५१९

बाह्य देह में जो सदा सुख का भान हता है, वह देहरूपी गेह में दिखता हुआ सत्य सुख नहा है।

विषय रूप आ सुख जे विश्व भासे,
न छे सुख ते लहेरमां आम भासे। ५२०

इस विश्व में विषय रूपी सुख का भान होता है परन्तु वास्तव में वह सुख नहीं है अपितु वह लहर की तरह सुख का भास होता है।

उठे ऊर्मियो जे विषय वात जोरे,
असल वस्तु सलमां जणाये न कोरे। ५२१

विषय रूपी हवा के कारण जो लहरें उठती हैं, उनमे असल चन्द्रमा लहरों की तह में दिखता नहा है।

असल नी नकल ते नकल ना अकल छे,
नकल क्यां अहा आ शकल वे शकल छे। ५२२

असल वस्तु की नक़ल करना असल का काम नहा है क्योंकि नक्ल कभी पूर्ण रूप से नहीं हो सकती। इसलिये शक्ल की वे शक्ल यहाँ खराब शक्ल बन जाती है।

हवे ऊर्मियो जो विरामे विरामे,
उठे लहेर ना तो सरो दृश्य जामे। ५२३

असल वस्तु क्या चीज है और कैसे दिख सक्ती है, इसके सम्बन्ध में लेखक ने कहा है कि जो लहरें उठती हैं, उनको यदि रोक दिया जाय तो पानी के स्थिर हो जाने से उसमें चन्द्रमा का साफ दर्शन हो सकेगा याने सत्य वस्तु बाहर आ जायगी।

विषय वायटा रोकवा केम ते तो,
चहूं पास मां पेसतो वेग ते तो। ५२४

परन्तु पानी का स्थिर करने के लिये पहले विषय रूपी जो पवन चलता है, उसके रोकने का उपाय करना चाहिये क्योंकि चारों तरफ पवन जोर-जोर चल रहा है।

चणो जोर अभ्यासनी भींत ज्यारे,
अतृष्णा अने तोषना ईंट गारे। ५२५

उस विषय रूपी पवन को रोकने के लिये दृढ़ अभ्यास रूपी दीवार को अतृष्णा रूपी ईंटों और सतोष रूपी सीमेण्ट से बनाने की जरूरत है।

सुसम्यक गुरु ज्ञाननी नीव नांखो,
भजो इष्ट चूनो दळी दिव्य राखो। ५२६

सुसम्यक् गुरु उत्तम तत्त्वज्ञान का जो उपदेश करते हैं, उसकी नाव के ऊपर दीवार बनाओ और अपने इष्ट के भजन रूपी चूने को पीस कर रक्खो।

अनिर्पा, अमोहे करीने जमीतर,
अकामी मसालो अमत्सर पलस्तर। ५२७

सिर अनीर्षा और अमोह का पानी छिड़क कर जमीन को तर

करो। उस पर काम-रहित मसाला और ममत्सर का प्लास्तर दीवार के ऊपर लगाते जाओ।

एवा रूपमां चार चोखो दिवालो,
चणो सर्व त्यागी समत्वे दिवालो। ५२८

इस प्रकार की अच्छी चारदिवारी त्यागवृत्ति और सुख-दुःख प्रति मन में समत्व रख कर बनाओ।

पछे ना पवन वैषिकी म्हांय पेसे,
हलावे न पाणी ठरी ठाम वेसे। ५२६

उस दीवार के बन जाने के बाद वैषयिक पवन अन्दर न जायगा और सरोवर के पानी का हिलना बंद होकर वह स्थिर जायगा।

यदि उर्मि ना तो खरू तत्व देखो,
अहा जो मनो निग्रही पाळ पेखो। ५३०

इसलिये यदि तुम मनोनिग्रह रूपी दीवार बाँधोगे तो लहरें न उठेंगी और तुम्हें सच्चे तत्त्व का भान होगा।

जणाशे खरो तत्त्व ते दिव्य ज्ञान,
अनन्तात्मना भावनूं दिव्य ज्ञान। ५३१

आत्मतत्त्व का वह ज्ञान अनन्तात्मा के भाव का सत्य दिव ज्ञान होगा।

पछे चन्द्रनूं त्यां खरू रूप जोशो,
महा ज्ञाननूं अन्त आ ब्रह्म जोशो। ५३२

और तब तुमको मानस-सरोवर में चद्रमा का सच्चा रूप दिखेगा वही महाज्ञान का अन्त ब्रह्म (आत्मतत्त्व) होगा।

जुओ काशनी हारमां दिव्य मोती,
प्रकाशे प्रकाशी रह्यू सर्व ज्योती। ५३३

उस काश के साथ तुमको दिव्य 'मोती' (गुरु) का काश दिखेगा, जो सम्पूर्ण ज्योति को प्रकाशमय बना कर स्वयं प्रकाशमान होगा।

महा योगनो सार आ दिव्ययोग,
करे ते तरे तारता तार योग। ५३४

इसको दिव्ययोग कहते हैं और यह सम्पूर्ण योगों का सार है इसका करनेवाला आप पार हो जाता है और दूसरा को भी पार करता है।

अहा चित्तनी वृत्तियो जो चळेना,
महा मोहनी वातमां जो टळेना। ५३५

इसलिये चित्त की वृत्ति को चलायमान न हने देकर महामोह रूपी पवन को यदि रोकेंगे तो—

पछे मानसर जो असर चन्द्रकाश,
उठे उर्मियो ना मळे दिव्यकाश। ५३६

मानस सर में लहरों का उठना बंद हो जायगा और तुमको चंद्रमा का प्रकाश याने दिव्य काश दिखेगा। (परन्तु जब तक लहरें उठती रहेंगी तब तक दिव्य काश नहीं मिलेगा)।

जणाशे जुओ मोति ज्योति स्वरूप,
पडो ना कदी तामसी अन्धकूप। ५३७

तुमको मोती का ज्योति-स्वरूप प्रकाश पर दिखेगा। फिर अँधेरे कुएँ में पड़ने का समय कभी नहीं आयगा।

विभूति योग

विभूति=धन=श्री, श्रेयत्व। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि दुनिया की वस्तुओं में जो श्रेष्ठ वस्तुयें हैं, वे सब विभूतियाँ हैं (अमुक व्यक्ति की विभूति याने उसकी श्री या श्रेयत्व)। 'वृक्षों में पीपल का वृक्ष, देवताओं में इन्द्र, मणियों में चिन्तामणि, नदियों में गंगा, आदि जो सब श्रेष्ठ हैं, वे सब मेरी विभूतियाँ हैं'—भगवान् कृष्ण का कहना यही है। परन्तु भगवान् मत्स्येन्द्रनाथ का कहना है और उन्होंने दिखाया है कि 'मैं अणु-अणु में समरूप से भरा हुआ हूँ। विश्व में जो कुछ है, सब मेरी विभूति है। उस सबमें प्रभु हैं, ऐसी जिस व्यक्ति की भावना होगी, वह मुझे देख सकेगा और उस व्यक्ति को दिन-रात मेरा स्मरण रहेगा।' अनन्त प्रभु को व्यापक समझ कर कि वह अणु-अणु में है, लक्ष पदार्थ में समरूप से भरा हुआ है, इस तरह चिंतन करते-करते प्रभु में तल्लीन हो जाने का नाम विभूति योग है। इस योग के करनेवालों को सब वस्तुयें समरूप से दिखती हैं। इस भैरवोपदेश में श्री गुरु शिष्य को निम्नलिखित प्रकार से विभूतियोग विस्तारपूर्वक समझाते हैं—

विभूति योग (गजल)

परब्रह्म रूपी महानन्द रूपी,
सदा ज्ञान केवल रहस्यादि रूपी। ५३८

हे शिष्य! यह ब्रह्म, जो अणु अणु में व्याप्त है, मुझसे अलग नहीं है। मैं उसका ही स्वरूप हूँ। विश्व में बहुत आनन्द से रहनेवाले भी, जिनका दुनिया के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं ही हूँ। विश्व का केवल विज्ञान भी मैं हूँ और विश्व का जो रहस्य है, वह भी मैं ही हूँ।

जुओ शुं मुने हु मुने नित्य जोऊं,
परम शान्त हुं चिन्मयी विश्व जोऊं। ५३६

हे शिष्य! तू मुझको क्या देख रहा है! मुझमें विश्व का चित् स्वरूप जो नित्य पदार्थ है, उसको मैं देख रहा हूं! मैं परम शान्त हूँ। मुझमें कोई उद्वेग या आवेग नहीं है और मैं इस विश्व को चैतन्यमय देख रहा हूँ।

अहा नित्य हूं शाश्वती हूं अदा हूं,
चिदाकाश सत्वे रह्यो जो गदा हूं। ५४०

मैं नित्य हूं यानी मुझमें कभी फरफार नहीं होता। मैं एक रस में रहनेवाला और सारी दुनिया की अदा हूँ। इस चिदाकाश की पोल में सार रूप से रहनेवाला मैं हू और व्यापक होने पर भी मैं त्यागी हूँ। मैं किसी वस्तु का ग्रहण नहीं करता।

कहीं जागतो स्वप्नमां क्यांय सूतो,
सुषुप्ती तुरीया बधे तेज हूं तो। ५४१

मैं जाग्रत होऊँ या स्वप्न के समान विश्व को देखता होऊँ या सुषुप्ति में शान्त या तुरीय अवस्था का अनुभव करता होऊँ परन्तु इस सबमें मैं ही भरा हुआ हू।

चिदातम चिदानन्द चैतन्यरूपे,
अनाकार साकार छूं सत्स्वरूपे। ५४२

मैं विश्व भर को चैतन्य आत्मा हूँ, सच्चिदानंद हूं, विश्व भर मे चैतन्य रूप से भरा पड़ा हूँ, मेरा कोई शरीर नहीं है, सब शरीरों में मैं वर्तमान हूँ और सब शरीरों का सार मैं ही हूँ।

वडू प्यारमां प्रेम हूं प्रेमिका हू,
थई स्वामि सेवा लऊ सेविका हू। ५४३

मैं प्रेम, प्रेमिका और प्रेम में पड़नेवाला आशिक हूँ। मैं मालिक बन कर दूसरों से सेवा करवाता हूँ और विश्व का सेवक बन कर सेवा करता हूँ।

अमा हूँ समा हूं समी सारमा हूं,
कहो क्यां न ज्यां हूं जड्यो तारमा हूं। ५४४

मैं अमावस्या हूँ, पूर्णिमा हूँ और विश्व में समत्व देनेवाला सार भी हूँ। ऐसी कोई भी जगह नहीं, जहाँ मैं नहीं हूँ। जिस तार से विश्व प्रकाशित होता है, उसमें मैं पूर्ण रूप से भरा हुआ हूँ।

सकल्पी, अकल्पी अने निर्विकल्पी,
असंगी सुसंगी कुसंगी विकल्पी। ५४५

मैं कल्पना करनेवाला हूं। जिसके विषय में कुछ सोचा नहा जा सकता, ऐसा अकल्पी और विचार करनेवाला निर्विकल्पी हूँ। मेरा कोई संग नही है। अच्छे-में-अच्छी और बुरी-से बुरी कोई वस्तु ऐसी नहीं, जिसमें मैं नहीं हूं। दुनिया की कल्पना करनेवाला भी मैं हूं।

निरामय निरीहोऽस्म्यहं निर्विकारी,
विकारो विकारी अकारी सुकारी। ५४६

मैं प्रलोभन से परे हूँ। ईषणा से रहित हूं। जगत् के विकार मुझे बाधक नहीं होते। जगत् के विकार मैं हूं। विकारों से मैं भरा हूँ। विश्व के कार्य न करनेवाला और उत्तम कार्य करनेवाला भी मैं ही हूँ।

सदा एकरस आत्म चिन्मात्र विग्रह,
मनो इन्द्रियो ते तणु हूं ज निग्रह। ५४७

मैं अपने में फेरफार का अनुभव नहीं करता याने सदा एकरस विश्व की आत्मा हूँ। चैतन्य मेरा शरीर है और मन तथा इन्द्रियों का निग्रह मैं ही करता हूँ।

परिछिन्न हूं रूप मारू अखण्ड,
परानन्द सचित् अने चंड अंड। ५४८

अणु के और टुकड़े न हो सकें, ऐसे छोटे टुकड़े मे मैं हूँ। मेरा रूप अखंड है। मैं विश्व के आनन्द से परे और सत् चैतन्य हूँ तथा तीव्र गतिवाले सूर्य आदि गोले हूँ।

मनो बुद्धि वाणी परे हूं अगोचर,
महाराज शोफर बन्यो हूं ज मोटर। ५४६

मैं मन, बुद्धि, वाणी सब इन्द्रियों से परे हूँ। मैं राजा होकर मोटर मे बैठता हूँ, मैं ही मोटर हूँ और मोटर का चलानेवाला शोफर भी हूँ।

अहो राजमां माधवी जादवी वे,
कहो मन्त्र जादू रहे ना रवी वे। ५५०

इस विश्व के लोकराज्य का स्वामी मैं हूँ। उसका सभासद मैं हूँ। किसी जगह एक साथ दो सूर्य नहा रहते। उस सत्य मंत्र से परे मैं हूँ याने करोड़ो सूर्य स्वय मै हूँ।

अनन्तातमारागम छे रूप मारूं,
महा सत्य आनन्द मां लक्ष्य मारूं। ५५१

अनन्त व्यापक चिन्मय आत्मा मेरा रूप है। आनन्दमय महा सत्य मे मेरा लक्ष्य है!

सदा शिव हूं जीव हूं शीवतो हूं,
वगु फाडतो चींथरा वीणतो हूं। ५५२

मैं विश्व का सदाशिव हूँ तथा साधारण-से-साधारण जीव हूँ। विश्व के फटे हुये कपड़ो को सीनेवाला मैं हूँ, मैं जुलाहा हूँ। कपडे फाड़नेवाला और कपड़ा न मिलने से चिथड़े बिननेवाला भी मैं हूँ।

महा पट्ट ने विश्वना चीर हू छू
अने पहेरनारो तथा पीर हूं छूं। ५५३

इतना ही नहा, विश्व के उत्तमोत्तम जरी के रेशमी पटकुल आर वस्त्र भी मैं हूँ। विश्व के च र में हूँ, पहननेवाला में हूँ और गुरु बन कर उपदेश करनेवाला भी म हू।

महाऽऽकाश आतम, जुओ जे अनातम,
अ ारे प्रकाशू प्रकाशे महातम। ५५४

इस अनन्त ग्राकाश म भरा हुआ चैतन्य पदाथ—आत्मा मैं हूँ और जो कुछ बुरा है, वह सब भा मैं हूँ। अधेरे म प्रकाश डालनेवाला और प्रकाश म अँधेरा करनवाला मे हा हू।

रसो हू अने आदि मध्यान्त हीन,
प्रदाता बली पीन हू क्षीण दीन। ५५५

मैं विश्व क सब रस हू। मरा आदि, मध्य और अन्त नहा है। मैं भगवान् बल का तरह दानी हूँ, पुष्ट हूँ, गरीब हूँ, दुबला पतला हूँ।

जगत चालतू चक्रनो हू नियन्ता,
थयू जे थशे माहरी एक सत्ता। ५५६

जगत् के इस गड़गड चलनेवाले चक्र का मैं नियन्ता हूँ याने चलाने वाला हूँ। आज तक जो हुआ और आगे जो होगा, उसका कारण मेरी सत्ता है।

पवन पाणी आकाश पृथ्वी अनेक,
अनल तत्त्व रूपो महारा अनेक। ५५७

पवन, पानी, आकाश, पृथ्वी, अग्नि आदि जो तत्त्व हैं, उनका मैं मूल हूँ। मेरे अनेक रूप हैं।

विशुद्धैक सचित अने नित्य बुद्ध,
सदा हूं परे सर्वथी तत्त्व शुद्ध। ५५८

विशुद्धैक सच्चित् और नित्य ज्ञान मैं हूँ। सर्व तत्त्वों के परे शुद्ध चैतन्य वस्तु मैं हूँ।

नथी रूप हूं निर्ममी हूं अरूपी,
न वाणी न भाषा रह्यो म्हांय छूपी। ५५९

मेरा कोई स्वरूप नहीं। मैं ममता से अलग हूं, अरूपी हूँ। मेरी वाणी नहीं, कोई भाषा नहीं—उस पर भी मैं सबके अन्दर छिपा हूँ।

न ॐकार मां हूं न रस रूप गन्धे,
न हूं स्पर्शमां ना रह्यो विश्वधन्धे। ५६०

न मैं ॐकार में हूँ जिसको ब्रह्मरूप माना गया है और न मैं रस में, न रूप में, न गंध में, न स्पर्श में हूं—न विश्व के कार्य में हूं।

सदा सर्वदा सर्वमां हूं ज हूं छूं,
नथी तो कशामां न पर सर्व हूं छूं। ५६१

तो भी यदि तुम देखना चाहो तो मैं सदा सबमें हूं और न देखना चाहो तो किसी में नहीं हूं तथा सबसे परे हूं।

रहूं मुक्तमां हूं रहूं बन्ध मां हूं,
कहूं क्यां न ज्यां हूं छतां क्यांय ना हूं। ५६२

जो लोग मुक्त हो गये हैं, उनमें मैं हूं और बँधे हुए में भी मैं हूं। ऐसी कौन जगह दिखाऊँ, जहाँ मैं नहीं हूं। उस पर भी मैं कहीं नहीं हूं।

महारू जुवो रूप क्यां विश्व गोती,
नथी हूं छतां काश परकाश मोती। ५६३

तुम विश्व भर में ढूंढ़ोगे तो भी मेरा रूप नहीं मिलेगा और उसमें न होने पर भी जगत् के प्रत्येक पदार्थ में, जिसको तुम देख सकते हो, में वर्तमान हू। विश्व के नाश का प्रकाश भी मैं हूं।

प्रभाती

अन्तरानन्द ने विश्व आनन्द हूं,
शब्द बोलुं न भाषा वदू हूं। ५६४

मैं अपने अंतर का महा आनन्द हूं। मेरा अतर आनन्द से भरा हुआ है। मैं विश्व का आनन्द हूं। मैं शब्द और भाषा—कुछ नहीं बोलता। मैं शब्दों से बहुत परे हूं। मुझे यदि किसी से कुछ कहना हो तो मैं शब्द से नहीं, अन्तर से प्रेरणा करता हूं।

सर्वदा श्री अधिष्ठानरू रूप हूं,
चिद्घनानन्द सन्दोह ते हूं। ५६५

मैं सदैव के लिये ईश्वर का स्थिति-स्थान हूं तथा चिद् घनानन्द का दुहा हुआ दूध भी मैं हूं।

देहना भाव मारा नहीं तो पछे,
क्यां रही चिन्तना ते परे हूं। ५६६

जब देह का भाव मुझमें नहीं है, तो फिर मुझे चिन्ता, सुख-दुःख, अच्छा-बुरा यह सब कहाँ से हो! मैं इन सबसे परे हूं।

चित्त वृत्ति रहित हूं अने तू नहीं,
आतमा एकने ते परे हूं। ५६७

मैं मन की वृत्तियों से रहित हूं। मैं और तू नहीं, केवल अकेला मैं ही एक व्यापक आत्मा और उसके परे हूँ।

दृश्य देखू नहीं रूप पेखू नहीं,
सर्वदा पूर्ण हू नित्य तृप्त। ५६८

मैं इस दुनिया में दृश्य को देखता नहीं, मुझे रूप का स्पर्श नहीं होता, मैं सर्वदा सब स्थितियों में पूर्ण और सदा के लिये इच्छा से रहित हू।

ब्रह्म हू विश्व हू दृश्य द्रष्टा अने,
दर्शनी कर्ष मा सत्य गुप्त। ५६९

मैं ब्रह्म हू, विश्व हू। दृश्य, द्रष्टा और दर्शन—ये तीनों मैं हू और दर्शन के आकर्षण में रही हुई सत्य और गुप्त वस्तु भी मैं हूँ।

आतमा अन्त अव्यक्त हू जे—
परात्पर विभु देहने गेह लुप्त। ५७०

आत्मा के परे जो अव्यक्त है और अव्यक्त के परे जो परात्पर विभु पुरुष है, वह भी मैं हू। प्रत्येक देह तथा घर में मैं व्यापक रूप से रहा हू।

हू गुरू शिष्य हू मातने पुत्र हू,
एक चैतन्य ना अन्य लुप्त। ५७१

मैं गुरु भी हू और शिष्य भी यानी पढ़ाने और पढनेवाला दोनों मैं हूँ। मैं माँ और पुत्र हू और एक ही चैतन्य रूप से विश्व में व्याप्त हू। मुझसे कोई वस्तु गुप्त नहीं है।

सर्व शास्त्रो कहे, तत्त्व ते हुज छू,
सर्व वेदो बताचे मुने क्या। ५७२

जिस तत्त्व ने सब शास्त्रों और विश्व के विज्ञान को दिखाया है, वह तत्त्व मैं हू। सब वेद मुझे नहीं दिखा सके।

हूं तजी विश्व बीजु लखे कोण क्यां,
वर्णता ते मुनी जो मुने क्यां। ५७३

मुझे छोड़कर विश्व में दूसरा कौन मेरा वर्णन कर सकेगा ? क्योंकि बड़े-बड़े ऋषि मुनि भी मेरा वर्णन नहीं कर सके।

सिद्ध हूं सिद्धि हूं, नित्य हूं शुद्ध हूं,
ब्रह्म हूं निर्गुणी स्पर्श ते क्यां। ५७४

मैं सिद्ध हूँ, मैं सिद्धि हूँ, नित्य हूँ, शुद्ध ब्रह्म और गुणरहित हूँ। कोई वस्तु मेरा स्पर्श नहीं कर पाती।

कोण देखे मने, हूंज हूं देखतो,
विश्व देखी जुओ दर्श ते क्यां। ५७५

इस दुनिया में मुझे कौन देख सकता है ! जहां देखूँ, वहीं मैं ही मैं दिखता हूँ। विश्व में जाकर देखो कि मेरे सिवा क्या दिखता है।

हूंज हूं भासतो, विश्वना काश तो,
क्यां रह्यु अन्य जे अन्य देखे। ५७६

इस विश्व के काश रूप से मैं ही भासता हूँ तो फिर और क्या रह जाता है कि अन्य वस्तु दिखेगी।

रूपना दृश्यना देखते हूंज हूं,
माहरू हूं लखुं आज लेखे। ५७७

मेरा कोई रूप नहीं, दृश्य नहीं, जो कुछ दिखता है, वह मैं ही हू और यहाँ अपना वृत्तान्त भी मैं ही लिख रहा है।

हूंज फेरा फरू, फेरवू हूंज ते,
हूं ज नाचु नचावु अलेखे। ५७८

मैं दुनिया को न दिखूँ ऐसी ही रीति से दुनिया में फेरा फिरता हूँ और दूसरों को फिराता हूँ। मैं नाचता हूँ और दूसरों को नचाता हूँ।

आत्म ज्योति अने काश आकाश हूं,
तुं रह्यो क्यां अमल मूल देखे। ५७६

मैं आत्मा की ज्योति हूँ, अवकाश में स्थित अनन्त सूर्य नक्षत्रों आदि का प्रकाश मैं हूँ। तब तू कहाँ रहा, जो मूल-सहित मूल को देख सके।

रूप चिन्मात्र आनन्द सच्चित्प्रभू,
प्रेमने नेम हुंथी परेना। ५८०

मैं चैतन्य से भरा हुआ सत्-चित्-आनन्द प्रभु हूँ। प्रेम और नियम मुझसे परे नहीं है।

प्रेमिका अन्तरे, रूप चिन्तन जुओ,
लक्ष्य लक्षण उभय भय परे ना। ५८१

प्रेमिका के जिस अन्तर में रूप का चिंतन होता है, उसी अन्तर में जाकर देखोगे तो वह लक्ष्य और लक्षण के परे होगा अर्थात् मेरे रूप का दर्शन नहीं होगा।

हुं रचूं माहरूं, भांगतो माहरूं,
ते छतां तेहमां हु खरे ना। ५८२

यह अपना विश्व मैं ही बनाता हूँ, तोड़ता हूँ! फिर भी उसमें मैं नहीं हूँ।

जागतो ऊंघतो माहरा म्हाय हुं,
ते छतां तेहमां हुं खरे ना। ५८३

मैं अपने अन्दर अपनी इच्छा से जागता हूँ, सोता हूँ और मैं उसमें नहीं हूँ।

न्याय मुर्जरिम हुकुम, पुलिस कानून हू,
हू डिफेण्डण्ट ने प्लेनटिफ जो। ५८४

मै न्याय, गुनहगार, हुक्म, पुलिस, कानून, वादी और प्रतिवादी हूँ।

प्लीडरी सार सोलीसीटर बार हू,
कर्म क्लाइण्ट जज प्रश्न इफ जो। ५८५

वकालत का सार, सालीसीटर, बैरिस्टर, कर्म रूप के वकील का ग्राहक, न्यायाधीश और प्रारंभ का प्रश्न, 'इफ'=जो, मैं ही हूँ।

राज्य म्हारू रह्यू अन्तरे माहरे,
कर्मचारी थई कर्म करतो। ५८६

मेरा राज्य मेरे अन्तर में है, मैं कर्मचारी बन कर कर्म करता हूँ।

आसने राज्य परधान हू राजियो,
हू प्रजा फेरमा भर्म भरतो। ५८७

मैं आसन पर बैठनेवाला राजा, राज्य प्रधान और प्रजा हूँ और मुझमें भ्रम का भरनेवाला या प्रजा के फेर में भ्रम भरने वाला मैं ही हूँ।

द्रव्य हू लाच हू लोभनो काच हू,
साचनी आच हू न्याय करतो। ५८८

मैं द्रव्य हूँ लाच हूँ और लोभ में रहा हुआ आकर्षण हूँ। मैं सत्य की आँच में न्याय करनेवाला हूँ।

हू मुने फेरमा दड आपू घणा,
माहरा बन्ध कर हूज धरतो। ५८९

मैं अपने को विश्व के चक्र में डालकर सजा देता हूँ—और अपने ही हाथ से अपने ही हाथ में बेड़ी पहनता हूँ।

काश आकाश हुं, सूर्य तारा शशी,
चीजळीनी गती नो पती हूं। ५६०

अवकाश में स्थित सूर्य, तारा, चन्द्र आदि का नाश मैं हूँ। विजली की गति का पति मैं हूँ।

ईशनो ईश अन्तरतणो अन्त हूं,
शक्ति शिवनी जती ते मती हूं। ५६१

मैं ईश्वर का ईश्वर, अन्तर का अन्त और दत्तयश म अन्तर्ध्यान हुई शिव की जो शक्ति—महाशक्ति है, वह भी मैं ही हूँ।

सागरी रत्न कौस्तुभ चतुर्दश मणी,
शेषना शीशनुं दिव्य मोती। ५६२

समुद्र के सम्पूर्ण १४ रत्नों और भगवान् विष्णु के हृदय की कौस्तुभमणि और शेषनाग के सिर की दिव्य मणि माला में ही हूँ।

गोत अन्तर जइ दर्श जो पामती,
देख ते तुज जे मव्य मोती। ५६३

तू अपने अन्तर म जाकर ढूँढ और जो दर्शन होगा, वही यह दिव्य मोती (प्रकाश) होगा।

भैरवी

अनेक संख्य हीन नित्य मुक्त ते विभू हू,
सु सत्य सर्व मुक्त, जन्महीन ते प्रभु हूं। ५६४

जो अनेक सख्याओं के परे हैं और जो कहा कर्मो फँसता नहा, वह नित्य विभु मैं हूँ। जो इस विश्व का सत्य है और जो सर्व मुक्त है और जो जन्मरहित है, वह प्रभु मैं हूँ।

अव्यक्त जोत विश्व जागती जणाय म्हारी,
पांच तत्त्व नित्य सत्व ओत प्रोत जारी। ५६५

इस विश्व की जो मेरी जागती हुई अव्यक्त ज्योति है, जिसको कोई जान नहीं सकता, वह पञ्चतत्त्वों और चैतन्य रूप से भरी हुई दिखती है।

न गोळती मिठास वर्णवे स्वभाव तेनो,
अभाव वर्णवे छतां न ते स्वभाव तेनो। ५६६

गुड़ की मिठास उसके स्वभाव का वर्णन नहीं कर सकती और उसके अभाव का वर्णन उसका स्वभाव नहीं होता।

आकाश सर्वकाश रूप छे अरूप मारू',
सत्ता भरेल शुद्ध मुक्त शब्द रूप मारू'। ५६७

यह अवकाश का महाकाश मेरा अरूप रूप है और सम्पूर्ण सत्ता से भरा हुआ शुद्ध अबाध्य शब्द मेरा रूप है।

विज्ञान ज्ञान सत्य नन्द नन्द हूं अनन्दी,
सच्चित अमोघ मन्द उग्र चंड हुंज नन्दी। ५६८

विज्ञान, ज्ञान, सत्य और आनन्द को भी आनन्द देनेवाला अमोघ सतचित् आनन्द, मन्द, उग्र, चंड और नन्दि भी मैं ही हूँ।

मोती अरंग रंग संग होय न्होय मोती,
पण भाव जो न देखतो बदाम होय मोती। ५६९

मोती में रंग हो या न हो तो भी वह मोती ही कहा जायगा पर उसमें भाव न होगा तो उसकी कुछ कीमत न रहेगी।

(गजल)

आ सर्व ब्रह्म सर छे, तुं जो अरूप शर्व,
आतम अनन्त चेतन, त्यां सर्व पर्व सर्व। ६००

यह विश्व एक ब्रह्मरूप तालाव है, उसमें तू चैतन्यमय अरूप शिव को देख। अगर उसमें तुमको आत्मचैतन्य का भाव सूझ पड़ेगा तो यह दुनिया तुमको कुछ भी जल्दी नहीं दिखेगी।

हुं तेज ब्रह्म सरनी छुं, एक लहेर ऊँची,
म्हारा थकी प्रकृतिना, ताळे देवाय कूँची। ६०१

मैं उस ब्रह्ममय समुद्र का एक ऊँची लहर हूँ और मेरे ही कारण प्रकृति के ताले में कुञ्जी लगती है अर्थात् मैं प्रकृति को नियम में रखता हूँ।

ते तूं नथी न क्या हुं, हुं तूं गये रह्युं ते,
ब्रह्मे जता रह्युं जे, हुं तेज ब्रह्म सर ते। ६०२

उस ब्रह्म का भाव तुझमें नहीं है और मुझमें नहीं है। 'तू' और 'मैं' के जाने से शेष 'यह' रह जाता है। इन दोनों के जाने से जो कुछ बाकी रह जाय, वही ब्रह्म समुद्र मैं हूँ।

ना बन्ध मुक्तिमां हुं, ना भाग त्यागमां हुं,
ना विश्व हुं चणायो, ना चक्र लागमा हुं। ६०३

न मैं बन्धन में हूँ, न मुक्ति में हूँ। न किसी के लाग-भाग में हूँ, न किसी त्याग में हूँ। न विश्व में चुना हुआ हूँ, न चक्र के लाग में हूँ।

आगम मुने न जाणे, ना वेद वात मारी,
हुं सर्वथी किनारे, छे सर्व जात मारी। ६०४

मुझे तन्त्रशास्त्र नहीं जानता, वेद मेरी बातें नहीं जानता, मैं सर्व से अलग हूँ और मेरी सर्व जाति है।

जे रस अखण्ड पूरो, जे पूर्ण पूर पूरो,
आनन्द सार सरनू, ते रूप सत्य शूरो। ६०५

इस ब्रह्माण्ड में जो अखण्ड और पूरा-पूरा सम्पूर्ण रस है, वही आनन्दरूपी समुद्र का सार है। यह एक भयरहित सत्य मैं कह रहा हूँ।

सर्वत्र तृप्ति रूपी, हूं सर्व तृप्त भूप,
हुं एक अद्वितीया, नन्दात्म सत्य सूप। ६०६

मैं सर्वत्र तृप्ति रूप से रह रहा हूँ। मैं सब स्थानों में हूँ और सर्व-तृप्त भूप हूँ, मैं एक हूँ। मैं आनन्दात्म सत्य का सार हूँ और मेरी कोई जोड़ी नहीं है।

ना जन्म थाय म्हारो, हुं मृत्युथी परे छूं,
मोती थइ रमु क्यां, क्यां हीर हार ते छूं। ६०७

मेरा जन्म नहीं होता। मैं मृत्यु से परे हूँ। कहीं मैं मोती होकर खेलता हूँ तो कहीं हीरे का हार बन कर रहता हूँ।

पूर्ण ज्ञान योग

चित्तादि सर्व भावे, त्यां ब्रह्म एक जोतो,
छे एज प्राण संयम, चित्त वृत्तियो ग्रहो तो। ६०८

जिस व्यक्ति ने योग का पूरा-पूरा अभ्यास करके आत्म-विज्ञान प्राप्त किया है, उस व्यक्ति को सदा के लिए चित्तवृत्ति को हाथ में रखने के लिए प्रत्येक जीव में ब्रह्म के दर्शन करते रहना होगा। यही उसके लिए प्राण संयम है। दूसरा प्राण संयम करने की जरूरत नहीं रहती।

ब्रह्मास्म्यहं सुवृत्ति, पूरक प्रकार सारो,
ते वृत्ति राख दृढ जो, कुंभक विचार मारो। ६०६

अपने आप ही ब्रह्म है ऐसी सुवृत्ति रखना उसके लिए पूरक के बराबर है और उस सुवृत्ति को दृढ रखना कुम्भक करने के बराबर है।

रेचक प्रपंच रोको, दिलमां असर न थाये,
आ चंचली अखाडे, ना क्यां जई फसाये। ६१०

दुनिया के प्रपञ्चों को रोकना रेचक करने के बराबर है। उसके दिल में अच्छे-बुरे का असर न होना चाहिए। ऐसा अभ्यास करते रहने से वह इस दुनिया के चचली अखाड़े में कहीं भी जायगा, फँसेगा नहीं। (चचली अखाड़ा अर्थात् वह जगह, जहाँ मन सहज में आकर्षित हो जाय)।

आ श्रेय प्राण संयम, ना नाक । बन्ध करवूं,
ना प्राण पीडवा क्यां, अज्ञान फेर फरवूं। ६११

यह अभ्यास प्राण के संयम करने के बराबर है। इसमें नाक बन्द नहीं करनी पड़ती, प्राण को कष्ट देने की जरूरत नहीं रहती, ऐसे अज्ञान के फेर में फिरने की जरूरत नहीं रहती।

जे मूल विश्वनू छे, जे मूल चित्त रोके,
ते मूलबन्ध योगे, जे मन प्रवाह रोके। ६१२.

विश्व का मूल जो आत्मा है, उसका विज्ञान होने से मन रुकता है। उस स्थिति के प्राप्त होने के बाद मन का प्रवाह रोकने के लिए मूलबन्ध करने की जरूरत नहीं।

विषयो गणो प्रथकमां, जो आतम भाव रोकी,
——ां रमे रमण प्रत्याहार काम - रोकी। ६१३

विषय के भोगने से मन उसमें फँसेगा। इसलिए विषय अपने से अलग नहीं, ऐसा मान कर काम की व्याप्ति को रोकने के लिए मन को आत्मा में लगाना आत्मज्ञानी के लिए प्रत्याहार के पालन करने के बराबर है।

ज्यां मन रमे स्वभावे, त्यां देख ब्रह्म दर्शन,
एवी जो धारणा तो, ते धारणा प्रदर्शन। ६१४

जहाँ मन अपने स्वभाव से ही आकर्षित होकर रमण करना चाहेगा वहाँ तुरन्त ब्रह्म के दर्शन करना। ऐसी धारणा का होना धारणा का प्रदर्शन है।

ब्रह्मास्मि धारणामां, जो ध्याननी स्थिति जे,
ते ध्यान पूर्ण ध्याता, मां एकनी स्थिति जे। ६१५

जो ध्याता 'अहं ब्रह्मास्मि' की धारणा रखकर आप ही ब्रह्म है, ऐसा ध्यान करता है, वह ध्याता पूर्णरूप से ध्यान के उदय होने पर ब्रह्म के साथ एकता की स्थिति का अनुभव करता है।

छे निर्विकार वृत्ति, तेनू न ज्यां स्मरण जो,
एकाग्र आत्म मस्ती, शोधो समाधि सत जो। ६१६

जिसकी वृत्ति निर्विकार है और जो विकारों का स्मरण नहीं करता, वह एकाग्र बन कर आत्म मस्ती में रह सकता है। ऐसी स्थिति का होना समाधि का सच्चा सत्व है।

आ सिद्धि साधनानी, पामे ते सिद्ध योगी,
शूं साधना रही त्यां, अन्तर थये अभोगी। ६१७

इस साधना की सिद्धि पानेवाला सिद्ध योगी बन जाता है और अन्तर से अभोगी बन जाने से साधना करने के लिए कुछ बाकी नहीं रह जाता।

तूं पूर्ण तूं पुरुष छे, तूं विश्वनो अधीश्वर,
तारा थकी थणायूं, आ दृश्य विश्व ईश्वर। ६१८

गुरु शिष्य से कहता है कि इस योग में तुझको जो उपदेश किया है, उसके अनुसार तेरी स्थिति बन जाने से तू पूर्णत्व प्राप्त करेगा। तू ही पुरुष कहलायेगा और इस विश्व का अधीश्वर बन कर इस विश्व के दृश्य मात्र का परम कर्ता तू ही कहा जायगा।

आ सत्य जो बताव्यूं, झाझूं वृथा वकूं तो,
तुं धार ज्ञान धारा, पामे अनन्त हुं तो। ६१९

यह सत्य बात तुझको बताई है। अब उसके सम्बन्ध में और कुछ कहना वृथा है। यदि तू इस ज्ञानधारा को धारण करेगा तो मैं जो अनन्त हूँ, उसी पद को तू प्राप्त करेगा।

मोती अनन्त सोती, छे विश्व बीजनी जे,
तुं गोत जो बतावूं अन्तर्जई जणी जे। ६२०

इसलिए मैं तुझको बताता हूँ कि इस अनन्त विश्व बीज की एक धारा, जो तेरे अन्तर में मौजूद है, उसमें तू मोती=प्रकाश को ढूँढ़।

आ ज्ञान सांभळ्युं तें, कर योग यज्ञ नेह,
जेथी पछे मरे ना, ने दिव्य थाय देह। ६२१

तूने जो ज्ञान सुना है, उसके अनुसार यदि तू चित्त को लगा कर योग यज्ञ करेगा तो तेरा शरीर छूट नहीं जायगा; फिर आगे अभ्यास करने के लिए तू उसको दिव्य बना कर रख सकेगा।

सेवा मळे विभूती तो थाय हूं समो तूं,
पामे न मोह फरता, मन ज्यां गमे रमो तूं। ६२२

यदि तुझे प्रभु की सेवा करने का अवसर मिलेगा तो भी तू मेरे ऐसा बन जायगा। फिर तू कहीं भी जायगा, मोह तुझे नहीं सतावेगा।

बोल्यो धरी चरणने, 'हे नाथ तत्त्व पाम्यो,
गत मोह कोह द्रोह, आ दास सत्त्व पाम्यो। ६२३

ऊपर का उपदेश सुनने के बाद शिष्य गुरु से कहने लगा कि हे नाथ, आपने मुझको सत्य तत्त्व बताया है, जिससे मेरे मोह, क्रोध और द्रोह आदि सब छूट गये हैं।

दाया थई तमारी हूं तूं तणो भिखारी,
मोती मळयुं गदाने, आ दिव्य भव्य भारी।' ६२४

आपकी मुझ पर अमोघ दया है। मैं आपका भिखारी आपको ही चाहता हूँ। इस फकीर को आपने बहुत भारी और दिव्य प्रकाश दिखाया है।

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पद्य-पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	५—२	मात्स्येन्द्र	मत्स्येन्द्र
५	१३—१	उठाडी	उठावी
१५	५७—१	कर्म	कर्मो
२०	७१—१	ढरी	ठरी
२१	७८—२	गर्कीव	गर्कांव
,,	८०—१	जगापो	जगावो
२२	८३—१	आमथी	आभथी
२५	९१—२	सर्वनू बीज	सर्वनाबीजे
२७	९६—२	तेजी	तेनी
,,	९७—१	अधिदेव	अधिदैव
३१	१०४—२	कर्मना	कमना
,,	१०६—१	गणां	घणां
३२	१०७—२	तू	तूं
३८	१३३—२	जात	जाग्र
४४	१४१—१	पोत	प्रोत
६१	२२४—२	तं	तूं
६४	२३४—२	निष्पन्ति	निष्पत्ति
६८	२५४—२	वधे	वधे
७६	२८७—२	घाले	धाळे
८१	३०६—१	विन्दु	बिन्दु
८२	३११—२	दीर्घ	दीघ
८२	३१६—२	विन्दु	बिन्दु
८६	३३२—२	विघारमां	विचारमां

पृष्ठ	पद्य-पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६१	३५५—१	धीना	सुधीना
६२	३६२—१	सतीर्थ	सत्तीर्थ
६८	३८७—१	उठाव	उठाड
१००	३६४—२	माती	मोती
,,	३६५—२	लाभ	लोभ
१००	,,—२	जागी	जागी
१०१	३६७—२	ना	न
१०२	४०३—२	छोडो	छेडो
१०३	४०८—२	शाक छोडी	शोक छोडा
१०५	४११—२	फलो	फला
१०६	४१८—२	चन्दनोमां	चन्दनोनां
१०७	४२२—१	जरा	जग
१०८	४२५—१-२	खिजर	खिमां
११०	४३५—२	कसटा	कसोटी
१११	४३८—१	आ	आं
१२४	४६६—१	लावी	आवी
१२६	५१८—२	देखाये	जणाये
,,	५१६—२	जणाये	देखाये
१४२	५८१—२	भय	नी
१४४	५६३—१	पामती	पामतो
१५०	६१६—१	वकू	वकूं

अनुवाद-अशुद्धियाँ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८५	११	आ···कहता···	अब जिस की

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			एकता करने की सरल रीति तुमसे कहता हूँ
,,	१८	शब	शब्द
२३	१०	करता	होता
८७	२२		सकता
२९	५	भटकने	भटकने
४३	२३	माननेवाला	जाननेवाला
८०	१	ॐ एक	ॐकार
८६	७	तुंवड़ी	तुरही
,,	२०	,,	,,
९२	११	मस्ती को	मस्ती का
१०७	१	वर्तमान	वर्तमान,
,,	६	ताड़ता	तोड़ता
१०९	३	ताड़	तोड़
१०७	२२	विषय को	विष को
१११	१०	मृग	मुरगा
१४३	१६	लांच	रिश्वत, घूस
१४६	६	कुछ भी जरूरी नहीं	झूठी चाहिए